1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI No.MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-2, अंक-3, दिसम्बर 2018-जनवरी 2019 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

सांस्कृतिक भूमिका के सार्थक 21 वर्ष...

चित्रकला पर एकाग्र

निरंतर प्रकाशन के इक्कीस वर्ष

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

जनसंपर्क मंत्री माननीय पी.सी. शर्मा का कला समय के संपादक भँवरलाल श्रीवास द्वारा स्वागत

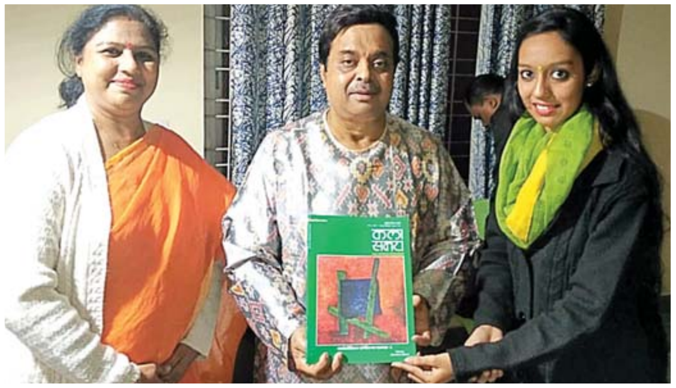

पद्मश्री शेखर सेन के साथ 'कला समय' की सांस्कृतिक संपादक संगीता सक्सेना और सांस्कृतिक प्रतिनिधि आस्था सक्सेना

समाजसेवी एवं अक्षम संस्था की अध्यक्ष डॉ. एकता धारीवाल के साथ संगीता सक्सेना और आस्था सक्सेना

भारत भवन प्रांगण में वरिष्ठ गोंड चित्रकार आनंद सिंह श्याम तथा विदेशी मेहमान कलाकार

राष्ट्रपति पुरस्कार एवं महिला शक्ति पुरस्कार से सम्मानित नौसेना अधिकारी श्रीमती एश्वर्या एवं श्रीमती बबीता शर्मा के साथ 'कला समय' परिवार

महेश शर्मा, उज्जैन के साथ 'कला समय' के सांस्कृतिक प्रतिनिधि देवेन्द्र सक्सेना

कोटा की युवा समाजसेवी एवं अक्षम की अध्यक्ष डॉ. एकता धारीवाल और सांस्कृतिक प्रतिनिधि व गायिका आस्था सक्सेना

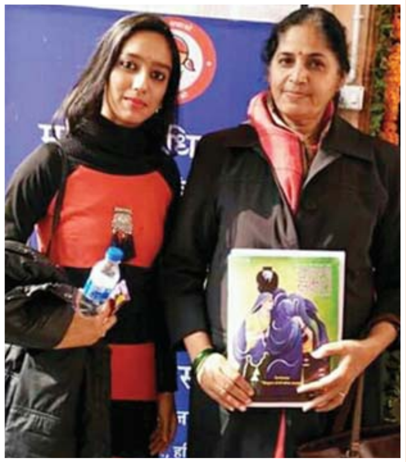

श्रीमती राजकुमारी हांडा, महिला अधिकारिता विभाग जयपुर एवं सुश्री आस्था सक्सेना गायिका ब्रांड एम्बेसडर कोटा (राजस्थान)

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(वर्ष : 21+2) पूर्णांक-96,
वर्ष-2, अंक-3, दिसम्बर 2018-जनवरी 2019

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल द्वारा पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजयशंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
ललित शर्मा
राग तेलंग
प्रो. सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
डॉ. शशि सांखला
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. अरविंद सक्सेना
चन्द्रमोहन सक्सेना
प्रो. कमला कौशिक

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
देवेन्द्र सक्सेना
9414291112
आस्था सक्सेना
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामू भैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
संगीता सक्सेना
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढे (एडवोकेट)

सहयोग राशि

वार्षिक	: 150 /-	(व्यक्तिगत)
	: 175 /-	(संस्थागत)
द्वैवार्षिक	: 300 /-	(व्यक्तिगत)
	: 350 /-	(संस्थागत)
चार वर्ष	: 500 /-	(व्यक्तिगत)
	: 600 /-	(संस्थागत)
आजीवन	: 5,000/-	(व्यक्तिगत)
	: 6,000/-	(संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजें)

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग संपर्क -
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सुविधा : 'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में नगद राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

शशांक
वरिष्ठ कहानीकार, चित्रकार
मुख्य व अंतिम आवरण
के चित्रकार

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

श्यामसुंदर दुबे

सुधीर पटवर्धन

लक्ष्मीनारायण पयोधि

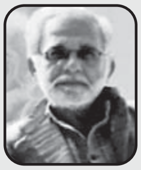
मनोहर काजल

बलराम गुमास्ता

इस बार

- संपादकीय / 5
  कला जीवन का सौंदर्य है
- साक्षात्कार / 6
  वरिष्ठ चित्रकार सुधीर पटवर्धन से भँवरलाल श्रीवास की बातचीत
- आलेख / 11
  मालवांचल की चित्रांकन-परंपरा : कुछ नये सन्दर्भ / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- आलेख / 16
  काव्य एवं चित्रकला का अंतर्संवाद : बिहारी सतसई के संदर्भ में / श्यामसुंदर दुबे
- आलेख / 19
  झालावाड़ की अचर्चित चित्रांकन परम्परा / ललित शर्मा
- आलेख / 23
  गोंड जनजाति की चित्रांकन-परम्परा / लक्ष्मीनारायण पयोधि
- आलेख / 25
  तानसेन : मिथक और यथार्थ / राम मेश्राम
- विश्व कविता / 34
  सुविख्यात रोमानिया कवि मारिन सोरेसक्यू की कुछ कविताएँ, अनुवाद : मणि मोहन
  यतीन्द्रनाथ 'राही' के गीत / 35
  देवेश पथ सारिया की कविता / 36
  चन्द्रसेन विराट की ग़ज़लें / 37
- कहानी / 38
  बेड़नी / मनोहर काजल
- आलेख / 45
  हाड़ौती चित्र शैली - एक कलात्मक अभिव्यक्ति / डॉ. मुक्ति पाराशर
- आलेख / 49
  कला और संस्कृति पत्रकारिता में कवरेज की गुणवत्ता / युगेश शर्मा
- पुस्तक समीक्षा / 51
  असाधारण, विलक्षण एवं सत्य तथ्यों पर आधारित लोक का विज्ञान / डॉ. मीना साकल्ले
  कृति विमर्श : कविता संग्रह 'अनुभव का मुँह पीछे है' पर बलराम गुमास्ता का विमर्श / 53
- समवेत
  क्षितिज संगीत समारोह में दिखा नये और पुराने संगीतकारों का संगम ..../ अटल साहित्य भूषण सम्मान'' 2018 से सम्मानित किया गया / नादऑरा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सांगीतिक पहल / वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान समारोह में हुआ रचनात्मकता का सम्मान देश के सात रचनाकार हुए सम्मानित / खोजी पत्रकारिता के लिए 'सत्यमेव जयते' एवं फौज के लिए 'राष्ट्र गौरव' पुरस्कार की घोषणा / सदा प्रज्वलित रखें समाज का दीपः राज्यपाल / डॉ.भानावत को कोमल कोठारी लोककला पुरस्कार / गुरु जितेंद्र महाराज को अटल नृत्य निष्णात सम्मान ... / संदीपन सोसाइटी का वार्षिक उत्सव सम्पन्न / ॐ नादब्रह्म संस्था का सांगीतिक आयोजन सम्पन्न / श्रेष्ठ भारत संस्कृति समागन में दिखी भारतीय कलाओं की श्रेष्ठता / स्मृति चिन्हः वसंत रानडे सुप्रतिष्ठित वायलिन वादक / उत्सव गणतंत्र में अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान से अलंकृत हुई नौ साहित्यिक विभूतियाँ / आपके पत्र।
- कला समय : नवांकुर, नन्हें कलाकारों की दुनिया / 65
  शिव सेन, सार्थक श्रीवास
- महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में / 66
  निर्मिश ठाकर

ललित शर्मा

राम मेश्राम

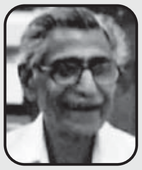
यतिन्द्रनाथ राही

डॉ. मुक्ति पारासर

युगेश शर्मा

डॉ. मीना साकल्ले

मणि मोहन

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - शशांक | **अंतिम आवरण चित्र** - शशांक
छायाचित्र - मनीष सराठे, सुनील सेन | **रेखांकन** - मनोहर काजल, शशांक | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास

संपादकीय

कला जीवन का सौंदर्य है

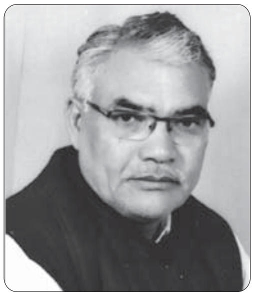

''गिर-गिर उठा / उठ-उठ गिरा / संघर्ष-लय टूटी नहीं
ऐसी सरस गति छोड़ / किस आराध्य का गायन करूं...
सम्पूर्ण जीवन को / ऋचाओं - सा रचा / अपने किये को / राम-सा
हरदम भजा / इससे इतर अब और मैं / किस सत्य का दर्शन करूँ।''
- वीरेन्द्र 'आस्तिक'

कला और संस्कृति के बिना मनुष्य समाज की परिकल्पना दुष्कर है। कलाओं की शक्ति और आंतरिक ऊर्जा ने मनुष्य समाज के विकास में अपना योगदान अनवरत प्रदान किया है। यदि कला छीन ली जाये तो मनुष्य मूक पशु में तब्दील हो जायेगा। कला अपने व्यापक अर्थ में मनुष्य जाति की पहचान है। बोलने और लिखने से लेकर विमान बनाने तक की सतत् विकास-गाथा में कलाओं की भूमिका को विस्मृत करना असंभव है। दूसरी ओर कलाकर्म और सृजन के अपने खतरे तो हैं, आज जीवन की आपाधापी में जुझारूपन का अभाव भी पैदा हुआ हैं। व्यस्तताएँ बढ़ी हैं। लोक कलाओं या आदिवासी कलाओं एवं कलाकारों पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। लोक कलाकार असंगठित हुए हैं। उनके सामने मुंह बाँए खड़ी रोजी-रोटी की समस्या ने कला को हाशिये पर ढकेल दिया है। कुल मिलाकर एक कला का माहौल जो आज होना चाहिये था वह नहीं है और यही कारण है कि दुनिया विज्ञान से उपजी निराशा झेल रही है। साज बनाने वाला दो वक्त की रोजी को तरस रहा है। सृजन प्रकृति का वह शाश्वत सत्य है, जो मनुष्यकृत होकर विभिन्न संकल्पनाएँ विभिन्न विचार एवं रचनात्मकता के साथ जुड़कर मनुष्य के जीवन में न केवल सकारात्मकता को जन्म देता है, अपितु मौलिकता एवं सम्यकता की उपस्थिति में उसे नैतिक चरित्र का धारक भी बनाता है।''वास्तव में जब मनुष्य परिश्रम के चाक पर जिम्मेदारियों की खुशबू से कर्तव्य परायणता की सिद्ध माटी से निर्मित अपने व्यक्तित्व के पसीने की आँच पर पकाता है तो उसका व्यक्तित्व निखर जाता है, जो दूसरे के लिए अनुकरणीय व प्रेरणा स्रोत बन जाता है।'' अत: वर्तमान युग को देखते हुए यह अपेक्षा की जा सकती है कि माता-पिता अपनी संतानों को उचित संस्कार देते हुए उनका मानस परिस्कृत करें, वही गुरुजन अपने ज्ञान और विवेक के प्रकाश से अपने विद्यार्थियों को ज्ञान की ओर प्रवृत्त करें, उन्हें सृजनात्मक बनायें आत्मनिर्भर बनने की दिशा में प्रेरित करें, जिसके फलस्वरूप युवा अपने जीवन में उज्ज्वल भविष्य की परिकल्पना को साकार कर सके।

वास्तव में हम सभी के भीतर एक ऐसी स्वाभाविक शक्ति होती है, जिसका प्रवाह सदैव बाहर की ओर उन्मुख होता है। यदि इस अतुलनीय शक्ति का उपयोग हम सृजन करते हुए आनन्द से जोड़ देते हैं तो यही शक्ति हमारे भीतर सकारात्मकता सौम्यता व सफलता के नवीन अध्यायों का सूत्रपात करती है, लेकिन ठीक इसके विपरीत यदि इस शक्ति का उपयोग सृजन करते हुए आनन्द से नहीं जोड़ा गया तो यह विनाश, विकृति और अशांति की ओर बहकर जीवन में प्राप्त होने वाले परम आनन्द को हमसे छीन लेती है। मनुष्य के विचार रूखे होते हैं और हमारे मन की भावनाएँ हृदय से जुड़कर उन्हें रसीला बना देती हैं हमारी पांचों इंद्रियों के माध्यम से हम जिस तरह की चीजों को ग्रहण करते हैं, वही भावनाएं हमारे मन तक पहुंच कर सृजन का कार्य करती हैं। किसी के भीतर पेंटिंग किसी को कविता, किसी को तकनीक आदि की गहराई को देखने की क्षमता होती है। तो वह उसी तरह का सृजन करना शुरू कर देता है। क्योंकि सृजनात्मकता से ही यह जीवन और संसार है। कला में अगर सौंदर्य-बोध न हो तो वह मौलिक सोच को भी मनुष्य निरपेक्ष नहीं होने देती। स्पन्दन के तहत है सृजन-निर्बाध सृजन धर्मिता के लिए स्पन्दन मात्र के नियम काफी नहीं होते। सृजनशीलता के लिए अटल निर्बाध और प्राकृतिक संचरण विचारों, भावनाओं और संवेदनाओं का होता है गीत का सृजन रागों से शब्द का सृजन ब्रह्म से भावों का सृजन संवेदनाओं से विधा का सृजन ज्ञान से होता है। यही सृजनात्मकता नैतिक आध्यात्मिक उत्कृष्टता से एक ऐसी सुकृति का सृजन करता है जो संसार में सम्मानीय और दर्शनीय मानी जाती है। गुरु भी एक सृजनकर्ता है, जो विद्यार्थी को सोने के समान तपाकर नैतिक सांस्कृतिक संस्कारित परत चढ़ाकर उसे सुकृत रूप प्रदान करता है।

कला समय पत्रिका सृजन के ऐसे ही विचारों, भावनाओं को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है जिनमें सृजन के इन्द्रधनुषी रंगों को देखा जा सके।

सभी पाठकों, लेखकों के लिए नव वर्ष 2019 शुभ हो, मंगलमय हो।

- भँवरलाल श्रीवास

साक्षात्कार

वरिष्ठ चित्रकार सुधीर पटवर्धन से भँवरलाल श्रीवास की बातचीत

यंग आर्टिस्ट या आर्ट स्टूडेण्ट्स को मैं अक्सर इतना बोलता हूँ आर्ट मार्केट के उतार-चढ़ाव बहुत कनफ्यूज कर सकते हैं

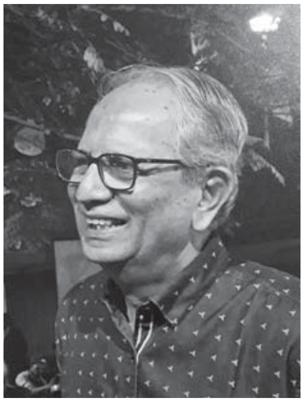

● **भोपाल के भारत भवन में जो एक्जीबिशन लगी हुई है, इसके बारे में क्या अनुभव रहा ?**

– यहाँ जो एक्जीबिशन लगी, भोपाल के जो लोकल आर्टिस्ट और आर्ट लवर हैं, मेरे ख्याल से उन सभी को एक्जीबिशन अच्छी लगी। दूसरी बात यह है कि बाहर से भी यहाँ कुछ लोग एक्जीबिशन देखने के लिए आये- मुम्बई से, दिल्ली से- कुछ आर्टिस्ट दोस्त हैं, कुछ स्टूडेण्ट्स हैं। पहले हफ्ते में यहाँ पर एक कैम्प भी हो रहा था, मध्यप्रदेश के बाकी स्टूडेण्ट्स भी थे। जो पास-आउट हुए हैं, यंग आर्टिस्ट हैं, उनका कैम्प था। उनके साथ बातचीत भी हुई। उनका काम देखा, अपना काम दिखाया। ये सारे इन्टरैक्शन से एक नये ऑडियंस के सामने काम रखने का अनुभव बहुत अच्छा रहा। फिर अन्त में जो कल हुआ, उसमें प्रयाग शुक्ल जी आये और विजयकुमार जी आये, जिन्होंने लिखा भी है, वो अनुभव भी मेरे लिए अच्छा रहा। और, नाटक तो मुम्बई में काफी बार हुआ है। देखा है। लगता है कि यहाँ के लोगों को भी नाटक काफी अच्छा लगा।

● **वहाँ नाटक हिन्दी में भी हुआ और मराठी वगैरह में भी हुआ ?**

– हाँ, मराठी में होता रहा है, दो साल से। अभी पिछले डेढ़ साल से हिन्दी में हो रहा है। ओवरऑल बहुत ही सेटिसफाइंग एक्सपीरिएन्स रहा और वो आगे सोचने के लिए प्रेरित करता है।

● **आपके नाटक के कितने शो हुए हैं ?**

– मेरे ख्याल से मराठी के पचासेक शो हुए हैं और कल उन्होंने घोषणा की थी कि हिन्दी के छब्बीस शो हुए हैं। नाटक के प्रोडक्शन से मेरा कोई वास्ता नहीं है...

● **पर आपकी थीम को लेकर उन्होंने जो काम किया है, वो आपके लिए प्लस प्वाइण्ट हैं। दूसरी बात, आपकी पेंटिंग में सामान्य व्यक्ति का जो संघर्ष दिखता है और महानगर की आपाधापी तथा एक अलग तरह की टीस जो दिखती है, उस थीम की कल्पना का उदय कब और कैसे हुआ ?आपने लिखा है कि अधिकतर संघर्ष और जद्दोजहद है आपके जीवन में। यह कहाँ से है ?**

– पूना में कॉलेज की पढ़ाई हो रही थी तभी ! कॉलेज खत्म करते ही मैंने तय किया कि आर्टिस्ट बनना है। 1973 में पूना से मुम्बई रहने आये। वो अनुभव बहुत महत्वपूर्ण था। पूना भी बड़ा शहर है मगर मुम्बई की तुलना में नहीं, मुम्बई कुछ अलग ही है। वो जो अनुभव था, मुम्बई में ट्रेवल करना- लोकल से ट्रेवल करना- वहाँ पर सब मिले, ये, वो, मजदूर। 1970 में, उस समय बहुत ज़्यादा स्ट्राइकें होती थीं, मोर्चे निकलते थे, स्टूडेण्ट आन्दोलन भी था और महाराष्ट्र में अलग पर पूरे देश में ही फार्मर्स का स्ट्रगल चल रहा था। सब जगह ! वो पीरियड खराब ही था, या संघर्ष का पीरियड था। फारवर्ड बाई दो इमरजेन्सी, फारवर्ड बाई द गवर्नमेन्ट चेंज़।

एक साल में वो जो हो रहा था उस सबका प्रभाव और मेरे ख्याल से महानगर का रहना, ट्रेवल करना, वहाँ की ऊँच-नीच का फ़र्क़ देखना ! सभी चीज़ों में यहाँ का कितना कॉण्ट्रास्ट दिखता है मुम्बई जैसे शहर के बनिस्बत। उससे मुझे लगता कि यही मेरा सब्जेक्ट है।

● **आपकी लगभग पाँच दशक की सृजन-यात्रा है और इसमें खट्टे-मीठे अनुभव आपको हुए ही हैं। ये पचास साल में बहुत सारे उतार-चढ़ाव आपने देखे होंगे, इस बीच बहुत सारे अनुभव भी आपको हुए होंगे। इसके सम्बन्ध में आप क्या कहना चाहेंगे ?**

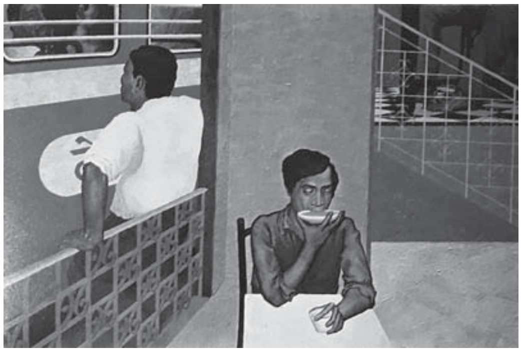

– आपका अपना खुद का एक जीवन रहता है और फिर परिवार है, दोस्त हैं, हार्डबोर्ड है, गैलरी है, वायर्स हैं, ये सब एक 'एक सोशल वर्ल्ड' रहता है। उसमें काफी तरह के अनुभव आते हैं। अच्छे अनुभव भी आते हैं और बुरे भी। सब कुछ आता है। और दूसरी जगह चित्रकार, इन सबका आपके ऊपर असर तो होता है, मगर एज़ अ आर्टिस्ट, आपका जो मार्ग रहता है, वो कुछ अलग रहता है। ये जो पर्सनल लाइफ है और जो सोशल लाइफ है या आर्ट-वर्ल्ड की लाइफ है, उसमें- जैसे आप कहते हैं उतार-चढ़ाव हैं- वो सब इफेक्ट करेंगे, मगर आर्टिस्ट का विज़न

एक तरह से डेवलप होता जाता है उसमें। ये अनुभव, जैसे कि उनको पूरा डाइजेस्ट करके। ये नहीं कि ये अनुभव आया और एकदम से आर्ट में वही रिफलेक्ट हुआ। ऐसा न होकर, वो डाइजेस्ट हो जाता है, फिर उससे अपनी पर्सनेल्टी में फ़र्क़ पड़ता है, अपनी दृष्टि में फ़र्क़ पड़ता है। मगर वो सब डाइजेस्ट होकर फिर कला के रूप में आता है और उसके कुछ, मतलब अभी जैसे आपको जो दिखता है। आप एक जगह पर खड़े हों और आप देख रहे हों या आप चल रहे हों और देख रहे हों और देखते-देखते आप सुन रहे हों, वो भी है और आप महसूस कर रहे हो कि गर्मी है या बारिश हो रही है। ये सब जो सेन्सेशन्स हैं, ये सब आपके आर्ट में अलग-अलग तरीके से उतरते हैं। आप कह सकते हो कि ऐसी दो पैरलल लाइफ्स चलती रहती हैं।

- **समानान्तर...**

– एक दूसरे के ऊपर इफेक्ट करती हैं, मगर उनका लॉजिक कुछ अलग रहता है।

- **कुल कितने वर्क हुए होंगे, अपने रेखांकन और पेंटिंग सब मिलाकर आपने कभी ये गिनती की है ?**

– नहीं, गिनती तो नहीं की।

- **क्यों आपके हाथ से, आपके स्पर्श से निकली हैं ये सारी कलाकृतियाँ...**

– ड्राईंग्स को गिनना तो बहुत मुश्किल है। कुछ स्कैच होते हैं और फिर बड़े एवं छोटे ड्राईंग्स हैं, उसमें कितने भी बनते हैं, कभी-कभी उसमें से निकाल कर गिबिड भी होते हैं कभी नहीं भी होते। ड्राईंग्स की गिनती करना मुश्किल है, मगर पेंटिंग्स भी मुझे ठीक से पता नहीं है।

- **यहाँ पर, भारत भवन में कितने हैं ?**

– यहाँ पर करीब तीन सौ हैं।

- **रेखांकन मिलाकर ?**

– हाँ, सब कुछ मिलाकर यहाँ पर तीन सौ हैं। पेंटिंग्स कम हैं। वैसे टोटल नम्बर में ड्राईंग्स ज़्यादा हैं। जो पेंटिंग्स बिकती हैं, उनको फिर से बारो करना मुश्किल हो जाता है।

- **भारत भवन के बारे में आपसे जानना चाहूँगा कि आपका दो माह का अनुभव कैसा रहा ?बीच में आप आते-जाते भी रहे। यहाँ का प्रशासन, स्टाफ और यहाँ की जो व्यवस्था आपने देखी, इस सम्बन्ध में या फिर आपकी आर्टिस्टिक दृष्टि के तहत एक मल्टीआर्ट कॉम्पलेक्स है, जिसे इन्दिरा जी ने नाम दिया- 'सब एक छत के नीचे'। जैसे पोइट्री भी है, फोक एंड ट्राइबल आर्ट भी है, आर्ट है, ड्रामा है। सब एक छत के नीचे है। मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान में इस तरह का दूसरा संस्थान कहीं नहीं है, जहाँ पर सारी चीज़ों का आनन्द एक श्रोता-आर्टिस्ट-दर्शक ले सकते हों। इस सम्बन्ध में आप क्या कहना चाहेंगे और अपनी राय, कि इसमें 'ऐसा अगर और हो जाये' तो ये और अच्छा हो सकता है। ऐसा कुछ आपने सोचा ?**

– यहाँ पर सभी लोगों का सहयोग है। उन्हीं का आइडिया था। उन्होंने ही सजेस्ट किया कि आप यहाँ प्रदर्शनी करो। तब से सभी लेवल्स पर पूरा सहयोग रहा। जैसे आइडियाज़, कैसे करना है, कब करना है, ट्रांसपोर्ट, इस सबको लेकर और फिर कैटलॉग बनाना। एक्ज़ीबिशन के प्रत्येक डिपार्टमेण्ट में पूरा सहयोग रहा है। एक्ज़ीबिशन लगाते समय स्टाफ से भी बहुत सहयोग रहा। यहाँ की एक्सपर्टीज़ प्रोफेशनल लेवल की है। और जगह, इसके बारे में बोलना तो बहुत ही ! और ऐसी जगह- मल्टी-लेवल्स पर- कि आप आर्ट गैलरी देखने के बाद दूसरी गैलरी देख सकते हो।

- **चार्ल्स कोरिया का अपना डिजाइन है और फिर लेक के किनारे है। मतलब ये जो स्पॉट चयन हुआ है, वो हर कहीं नहीं मिल सकता। गैलरियों के अप-डाउन जो हैं।**

– यहाँ आकर ऐसा लगता है, जैसे आप किसी और जगह चले जाते हो, या किसी आर्टिस्टिक दुनिया में चले जाते हो। ये जो बात है कि सभी कलाओं का एक जगह पर रहना– मेरे ख्याल से– ये बहुत ही महत्वपूर्ण है। ये चीज़ पता नहीं क्यों और जगह पर नहीं होती ? क्योंकि कोई भी कलाकार हो, लेखक हो, कवि हो, या पेंटर हो या डांसर हो, अल्टीमेटली ये सभी का कहीं न कहीं गहरा रिश्ता है और एक दूसरे को समझने में– ले–मैन से कम्पेयर करें– तो इनको एक–दूसरे की कला और एक–दूसरे के इनटेन्शन को समझने में तकलीफ नहीं होनी चाहिए।

काफी जगह पर हम देखते हैं, जो लेखक हैं उनको पेंटिंग में कोई रस नहीं है, या वो कोई ! मतलब जो अच्छी पेंटिंग समझते हैं। मगर वह जो लेखक है उसे पुरानी टाइप की पेंटिंग ही अच्छी लगती है। या फिर गायक हो, वह भी अपने ही में मस्त रहते हैं, बाकी किसी कला की तरफ देखते नहीं ! मगर यहाँ पर एक जगह ऐसी है जहाँ पर लोग साथ में एक दूसरे से इन्टरैक्ट होते हैं।

मुझे लगता है कि ये जो मॉडल हैं, ये हर स्टेट में, हर जगह होना चाहिए और अफसोस यह है कि यहाँ का जो विज़न था, और जगहों पर वो विज़न आगे नहीं लिया। मगर इधर अभी बीच में, कई साल में, थोड़ा–सा भारत भवन के बारे में ऐसे अभी कम हो गया, उधर की एक्टिविटीज़ कम हो गयीं, ये तो हम सुनते आये हैं, मगर अभी भी इसमें जो पोटेंशियल है नेशनल लेवल पर एक इम्पॉर्टेण्ट सेण्टर होने का, वो बिल्कुल है। और इम्पॉर्टेण्ट अलग तरीके से ! ये नहीं कि सिर्फ़ विजुअल आर्ट का सेण्टर हो या थियेटर का सेण्टर हो, सभी आर्ट का सेण्टर है। अशोक वाजपेयी ने एक सुन्दर बात कही थी– यहाँ पर अटैम्प्ट थ्रू डेवलप मल्टीआर्ट रसिकता। तो मल्टीआर्ट रसिकता डेवलप करने का जो एक विज़न था, उसको लेकर और जगह भी होना चाहिए।

और कुछ जो हो सकता है, उसके बारे में हम यह कह सकते हैं कि भारत भवन का खुद का कलेक्शन इतना महत्त्वपूर्ण है, वो यहाँ के लोगों को तो भारत भवन में देखने को मिलता ही है, उसको बाहर लेकर जाने का भी कोई प्रोजेक्ट अगर हो ! जैसे म्यूजियम का जो कलेक्शन है, उसमें से सिलेक्ट करके दूसरे म्यूजियम में, जैसे बैंगलोर में है, दिल्ली में है, मुम्बई में है। ये गवर्नमेण्ट इंस्टीट्यूशन्स ही हैं, इनके बीच भी आदान–प्रदान होना चाहिए और वो कोई अच्छा क्यूरेटर हो उनसे ! ऐसे कुछ आगे बढ़ने के काफी रास्ते हो सकते हैं।

● **आज 22 अप्रैल है और ये 'हमसफर एक्जीबिशन' क अन्तिम दिन है। आप कैसा फील कर रहे हैं ?आपको सन्तोष है इस एक्जीबिशन को लेकर ?**

– हाँ, एक्जीबिशन को लेकर बहुत अधिक सन्तुष्ट रहा हूँ। बहुत हैप्पी रहा हूँ। यहाँ से जाने का मन नहीं कर रहा है। मगर वापस आयेंगे। यहाँ पर काम करने का मन करता है। यहाँ आने पर लगता है कि यहाँ काम करें। दूसरी बात यह है– जैसे मैंने शुरुआत में कहा– कि मेरे लिए इतने सारे काम एक साथ देखकर, अपनी खुद की जो जर्नी है, उसके बारे में क्रिटिकली सोचना भी हो सकता है और इसमें आगे जाने के क्या रास्ते हैं, कहाँ से आपके लिए– ये भी महत्वपूर्ण रहा है।

● **ये जो लगभग तीन सौ चित्र लगे हैं, इसमें भारत भवन के तो अपने होंगे ही...**

– चार बड़ी पेंटिंग भारत भवन की हैं।

● **मैं समझता हूँ कि वो अभी भी सबमें लीड कर रही हैं। जो आपके सिलेक्टेड वर्क हैं, उसमें मुझे नहीं लगता कि वो दूसरे को डिफीट दे रहे हों। आपके वो चित्र आज भी वैसे ही हैं। मैंने 1982 में ये चित्र देखे थे। ये लगभग छत्तीस साल पुराने चित्र हैं।**

– ये अभी चार साल के ही हैं, वो 1978–79 के हैं।

● **वो मुझे स्तरीय काम दिखे और तब से मैं समझता हूँ कि उससे भी बड़े चित्र आपने किये हैं। कितने बड़े तक किये हैं ?**

– सबसे बड़ा जो बना 2014–15 में, वो अट्ठाइस फुट का है। साढ़े सात बाई अठ्ठाइस। ये महिन्द्रा एंड महिन्द्रा कम्पनी के ऑफिस में लगा है। उसका सब्जेक्ट ही 'बम्बई' है। सिटी स्कैप्स काफी बड़े बने हैं, मगर यहाँ पर उनको बारो करके ला नहीं सके।

● **ये जो तीन सौ चित्र हैं, ये कहाँ–कहाँ से अरैन्ज किये ?**

– मेरे खुद के पास बहुत सारे हैं। जो ड्राइंग्स हैं, वो बहुत सारे मेरे पास रखे हुए हैं और कुछ पेंटिंग्स, जैसे यहाँ पर जो लगी हुई हैं, वो फैमिली की हैं। वो मेरे वाइफ की है, मेरे बेटे की फैमिली की है, ऐसी जो पेंटिंग्स हैं, वो तो हमारे पास ही हैं– काफी ड्राइंग्स और कुछ जो बहुत पुराने पेंटिंग्स थे, वो मैंने ही रखे थे। तो वो हैं। फिर सुश्री शालिनी साहनी, जो गिल्ड आर्ट गैलरी, मुम्बई से आयी हैं। उन्होंने एक्जीबिशन के आयोजन में बहुत मदद की है। उनके साथ मेरी एक्जीबिशन होती रही हैं, वो काफी सालों से मेरी पेंटिंग्स खरीदती आयी हैं अपने कलेक्शन के लिए।

● **वहाँ से कितने वर्क आये हैं ?**

– मेरे ख्याल से एक सौ बीस काम वहाँ से होंगे। फिर वढेरा आर्ट गैलरी से तीस काम आये हैं और कुछ दोस्तों से हैं, वैसे ज़्यादा तो नहीं, पर ऐसे दस–पन्द्रह काम दोस्तों से बारो किये हैं।

● **सबके सहयोग से एकत्रित करके आपने अपना सारा वर्क एक छत के नीचे देखा तो आपको सन्तोष हो रहा होगा और गर्व भी महसूस हो रहा होगा कि यह कितना बड़ा काम है, जिसे आप सबके साथ एक साथ एक्जिबिट कर पाये। यह इस तरह का**

इतना बड़ा शो पहला है ?

– हाँ, शो तो पहला ही है। यही होता है कि पिछले तीन-साल का काम ही एक्ज़ीबिशन में लगता है और उसके बाद फिर तीन चार साल काम करो फिर वो एक्जीबिशन, लेकिन इस तरह बिल्कुल शुरुआत से लेकर आज तक का काम एक साथ कभी प्रदर्शित नहीं हुआ।

- **आपकी कला-सृजन यात्रा में बहुत सारी एकल प्रदर्शनियाँ हुई हैं। आपकी फ़िल्म भी है, नाटक भी है और आपने आर्ट पर साहित्य भी लिखा है। थोड़ा-बहुत जो भी लिखा है, मगर लिखा है। लगभग हर विधा में आपकी प्रतिभा को उजागर होने का एक प्रकार से मौका मिला है। इसके पीछे आपकी जो प्रेरणा है, किस शख्सियत को आप पूरा क्रेडिट देना चाहेंगे ?मतलब वो कौन शख्स है, जो आपके साथ है...**

– वैसे एक का नाम तो नहीं ले सकता! फर्स्ट प्लेस पर तो शान्ता जी हैं, जो खुद डांसर हैं और उनको समझ है और उनका आर्टिस्ट का जीवन और क्रिटिकल भी हो सकता है, दोस्त का, जैसे कि ये बन रहा है या नहीं बन रहा है, ये रास्ता शायद गलत है। आर्टिस्ट होने की वजह से ये सब डिस्कशन उनके साथ होता रहा है। हम लोग शादी से पहले भी एक दूसरे को जानते थे। सात-आठ साल। कॉलेज में एक साथ थे। वो एक मेन और उनके पोर्ट्रेट्स मेरे काम में काफी दिखते हैं, हर जगह दिखते हैं।

फिर एक आर्टिस्ट मिले थे- पूना में जब मैं कॉलेज में था- मुकुन्द केलकर। उनको मैं शुरुआत के काम दिखाने ले जाता था। उन्होंने मेरे काम में जो एक कॉन्फीडेन्स दिखाया, क्योंकि वो वक्त ऐसा रहता है कि- यू आर नॉट श्योर ऑफ योरसेल्फ्। मैं अठारह-बीस साल का था, मेडिकल कॉलेज में पढ़ता था, फिर आर्टिस्ट भी बनना चाहता था, तो प्रोफेशनल आर्टिस्ट से प्रोत्साहन मिलना! वो महत्वपूर्ण था। फिर बाद में जाकर श्री शंकर पणशीकर, जो बड़े आर्टिस्ट थे, जे.जे. ऑफ आर्ट्स के बहुत साल डीन रहे, उनसे बहुत गाइडेन्स मिला। और फिर सीनियर आर्टिस्ट जैसे अकबर पद्मसी, तैय्यब मेहता, गीव पटेल, गुलाम मोहम्मद शेख, भूपेन्द्र खक्कर। ये लोग हमारे कन्टम्परेरी सीन में हैं, मुझसे सीनियर हैं, मगर इनके काम के साथ में मेरा काम जुड़ गया है। इन सभी का इनफ्लुएन्स कहो, और सभी का है। फिर यंग आर्टिस्ट से भी इंस्प्रेशन मिलती है। यह नहीं कि सिर्फ़ सीनियर आर्टिस्ट से भी मिलती है। यंग आर्टिस्ट कोई नया काम करते हैं तो देखकर लगता है कि- यार, इससे मैं कुछ सीख सकता हूँ।

- **सर, आप डॉक्टर भी हैं और कला-सर्जक भी हैं और जीवन के संघर्ष हैं। आपकी दिनचर्या क्या है ? ये सब चीज़ों को करते हुए आप इतना समय निकाल पाते हैं, इस कला-सृजन के लिए ?वो कैसे आपने साधा।**

– जब प्रैक्टिस करता था, तब टाइम मैनेज करना पड़ता था। लकीली कहो या यह कि हमने मैनेज ऐसे किया कि घर, स्टूडियो और क्लिनिक तीनों एक दूसरे से बहुत दूर न हो मतलब क्लिनिक जाना, फिर स्टूडियो जाना और फिर ये सब, एक टाइम फॉलो करके होता था। अब 2005 से तो क्लिनिक बन्द कर दिया हे ? सिर्फ़ आर्टिस्ट हूँ घर में ही स्टूडियो है। सुबह उठे, नौ बजे से डेढ़-दो बजे तक काम निपटाया, फिर खाना लेकर, थोड़ा आराम करके फिर से दो-तीन घंटे काम होता है। रेग्युलरली, एव्री डे!

- **सुबह नौ बजे से दोपहर तक और शाम को फिर से...**

– शाम को एक-दो घंटे काम होता है। सुबह का मुख्य काम चार-साढ़े चार घंटे हो जाये तो फिर दिन अच्छा जाता है।

- **आज भी सफर जारी है ?**

– हाँ।

- **आज के जो समकालीन-आधुनिक चित्रकार हैं, उनको अपना कोई अनुभव और संदेश या मैसेज देना चाहेंगे ?एक सफल चित्रकार के नाते और एक सीनियर आर्टिस्ट के नाते उनको दशा-दिशा, जिससे कि वो अपने जीवन में तय करें और उसको फॉलो कर सकें। उसके लिए आप यंग आर्टिस्ट को क्या संदेश देना चाहेंगे ?**

– यंग आर्टिस्ट या आर्ट स्टूडेण्ट्स को मैं अक्सर इतना बोलता हूँ– आर्ट मार्केट के उतार-चढ़ाव बहुत कनफ्यूज कर सकते हैं, एक समय हमारा यूथ वगैरह का काफी ऐसा ही समय था और पहले आर्टिस्ट के समय में ऐसे ही था कि आर्ट वर्क बिक गया, आप उससे अपना जीवन चलाओ। ये मुमकिन नहीं था, इसलिए कुछ तो और करना था, कहीं नौकरी करनी थी या दूसरा कुछ या सेल्फ़ पैसा हो तो ठीक है, मगर कुछ तो अलग करके ये अपने लिए करना है। फिर बीच में आर्ट मार्केट बढ़ गया और लोगों को लगा कि बस हम सिर्फ़ आर्टिस्ट होकर पर्याप्त कमा सकते हैं कि जी सकें। लेकिन मार्केट अप होता है, डाउन होता है, फिर बहुत फ्रेस्टेशन आ जाता है। ये मैंने स्टूडेण्ट्स में देखा है। जो पासआउट होते हैं, यंग आर्टिस्ट हैं, वो बोलते हैं– 'हम नौकरी नहीं करते, हम आर्टिस्ट हैं, हम सिर्फ़ पेंटिंग करेंगे, हम सिर्फ़ ये करेंगे।' लेकिन दो साल तक करते हैं, फिर कुछ बिका नहीं, आगे का कुछ रास्ता दिखा नहीं, तो फिर छोड़ दो।

ये फ्रेस्टेशन आ जाता हे, उससे आगे आपको अगर कुछ करना है तो– जैसे बोलते हैं, 'लम्बी रेस का घोड़ा होना चाहिए'– आप खुद को कहो कि दस साल कुछ होने वाला नहीं है, आपको काम करना है, आपकी एक्ज़ीबिशन ये, वो। मगर उसके विरुद्ध बहुत सारे फोर्सेज़ हैं। आजकल कॉलेज में गैलरीज़ पहुँच जाती हैं, वहाँ तीस लड़के पढ़ रहे हैं, उनमें से दो लड़कों को उठा लिया, उनकी एक्ज़ीबिशन कर ली। फिर बाकी के लड़कों को लगता है। ये सब बहुत कॉम्पलैक्स है। इसलिए एडवाइस देना बहुत मुश्किल है, मगर सँभलकर रहना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि अपना काम कन्टीन्यू करें। किस तरह से हम कन्टीन्यू कर सकते हैं, मार्केट से अलग, कुछ बिके, न बिके। जो बिकता है वो बोनस है। आज भी कुछ अच्छी सिचुएशन नहीं है। कुछ आर्टिस्ट को छोड़कर बाकी के आर्टिस्ट के लिए स्ट्रगल ही रहता है।

और, ये सभी आर्ट में है। कौन लेखक है ? सभी नौकरी करते हैं, प्रोफेसर हैं। या फिर विजुअल आर्टिस्ट में कहीं एडवरटाइज़िंग में किया, कहीं इधर किया। नाटक वाले तो बहुत परेशान हैं, पहले अपना जॉब सँभालो, फिर उससे समय निकालकर नाटक करो।

● **पूरे देश में भागना पड़ता है, कहीं शो यहाँ हुआ, वहाँ हुआ। कम से कम चित्रकार के नाते ये तो नहीं है। वह अपने स्टूडियो में बैठकर इत्मीनान से, एकान्त में कर सकता है, दूसरी विधाओं में ये सम्भव नहीं है। चित्रकार कर सकता है, लेखक भी कर सकता है, मगर जो दूसरी विधाएँ हैं– गायन, वादन, नृत्य– उनमें भागना-दौड़ना ज़्यादा है, संघर्ष ज़्यादा है।**

– उससे ज्यादा आकर्षित न होकर काम करना।

● **पेंटिग की कीमत जो आँकते हैं, इसके पीछे क्या गणित रहता है ?जैसे किसी आर्टिस्ट की पेंटिंग की कीमत एक करोड़ है। लेखक की कितनी भी अच्छी कृति को ज्ञानपीठ मिल जाये, पद्मभूषण मिल जाये तो भी इतनी राशि उसको नहीं मिल पाती। मगर एक पेंटिंग आर्टिस्ट को सब कुछ दिला सकती है– मान-सम्मान, शोहरत, अर्थ, सब कुछ। इसके पीछे गणित क्या रहता है ?**

– मैं नहीं बता सकता कि गणित क्या रहता है। वो तो मार्केट फोर्सेज़, सप्लाई, डिमाण्ड जो कुछ है ! प्राइज कैसे बनती है और कौन गैलरीज़ उसको बढ़ाती है ! किसी के पास एकाध आर्टिस्ट की, वह आर्टिस्ट यंग हो, उसने कलेक्शन कर लिया, फिर प्राइस को बढ़ाना है। बहुत सारा होता है ! इसको समझना मुश्किल ही है।

● **उसके दूसरे फण्डे हैं...**

– हम लोगों को वो इतना समझता नहीं है...

● **और कुछ आप बताना चाहेंगे कि अपनी बात कुछ अधूरी रही है...**

– नहीं, हमने काफी कव्हर किया है। मीडियम के बारे में एक चीज़ है। जैसे हम ड्राइंग-पेंटिंग के लोग हैं। नब्बे साल के बाद मैं काफी बदलाव आये हैं– न्यू मीडिया, ये, वो और फिर वीडियो और इंस्टॉलेशन आर्ट– ये सब आये हैं। मुझे लगता है कि इन सबको सिम्पैथिकली देखना चाहिए। 'सिम्पैथिकली' मतलब इस तरह के काफी जो लोग हैं वो समझते हैं कि ये सिर्फ़ नकल हैं। उसको क्रिटिसाइज़ करते हैं कि ये विदेश में जो हो रहा है उसकी नकल कर रहे हैं।

इस तरह से नहीं देखना चाहिए। नया मीडियम किसी के भी हाथ में आये, एक्ससाइटिंग रहता है। कोई नयी पॉसिबिलिटीज़ हैं, करना चाहते हैं तो यंग आर्टिस्ट को करने की फ्रीडम होनी चाहिए। उसके पीछे सिर्फ़ ये होना चाहिए कि वह लगन से मीडियम का अभ्यास करके, उसकी जो पॉसिबिलिटीज़ हैं, उनको लेकर सीरियसली काम करे।

ये सभी मीडियम में है। पेंटिंग है तो ऐसा नहीं है कि उठकर पेंटिंग शुरु किया और इमिडियेटली उसमें कुछ सक्सेज मिल गया। ऐसे ही वीडियो या इंस्टॉलेशन आर्ट का है, उसमें काम जो करते आये हैं, शुरू में लगता है कि ये तो वहाँ हुआ था, ये तो उधर हुआ था। कॉपी करने से लोग सीखते भी हैं और फिर उससे आगे बढ़ते हैं। इसलिए न तो लोगों को न्यू मीडिया से ओव्हर क्रिटिकल होना चाहिए और न सिर्फ़ न्यू मीडिया है इसलिए वो अच्छा है और यह भी नहीं सोचना चाहिए कि ये पुराना है इसलिए अच्छा नहीं है।

● **इस बातचीत के लिये आपको बहुत धन्यवाद!**

■

आलेख

मालवांचल की चित्रांकन-परंपरा : कुछ नये सन्दर्भ

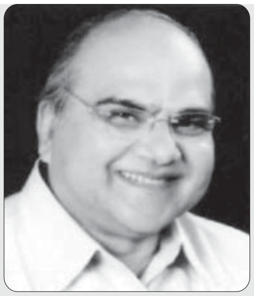

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

हमारी परंपरा की यह अद्‌भुत विशेषता है कि उसने शब्द और रूप दोनों को ही उनकी असीमित व्यंजना के रहते, बाँधने का सफल प्रयास किया है। रूप अपने संपूर्ण अस्तित्व के साथ जब मध्यकाल के चितेरे की तूलिका से बाँधा गया, तब रूप को रंगों और रेखाओं के माध्यम से बाँध लेने की प्रक्रिया सहज नहीं थी। वह एक तपस्वी की साधना की तरह थी, ऐसी निष्काम साधना की तरह जिसकी परिणति के रूप में साधक ने कुछ नहीं चाहा। यही कारण है कि मध्यकाल के अधिकांश चितेरों के नाम हमें ज्ञात नहीं हैं। समूचे देश के विभिन्न अंचलों में, विभिन्न शैलियों में, विभिन्न विषयों को तथा काव्य ग्रंथों के प्रसंगों को आधार मानकर चित्रांकन हुए, विशेष रूप से राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में। इन चित्रांकनों के संदर्भ में विशिष्टता यह रही कि इनकी शैलियां अपने उन स्थानों के नामों के आधार पर जानी गई, जिन स्थानों पर ये चित्र विभिन्न कालखण्डों में बने। राजस्थान के छोटे से छोटे ठिकाणे में बनें चित्र उस ठिकाणे के नाम से जाने जाते हैं, जैसे देवगढ़, नागौर, रियां और बेगूं। रियासतों में तो इन शैलियों का अपना वैभव है। मेवाड़, उदयपुर, जयपुर, बीकानेर जोधपुर, किशनगढ़ और नाथद्वारा जैसी प्रख्यात् शैलियाँ यहाँ विकसित हुईं। इसी तरह हिमाचल प्रदेश में नहान बाहु जैसे छोटे स्थानों पर जो शैलियाँ पनपीं उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। इनके अलावा कांगड़ा, गुलेर, बसोहली, चम्बा, गढ़वाल, मण्डी, बिलासपुर तथा नूरपुर जैसे स्थानों पर जिस पहाड़ी शैली ने विकास पाया, वह विश्व के कला इतिहास की धरोहर है।

मालवा के संदर्भ में यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि इस शैली का अस्तित्व सोलहवीं सदी से मिलता है तथा इसका निरन्तर विकास होता रहा है, किन्तु इसे मालवा कलम के नाम से ही जाना जाता है। राजस्थान तथा हिमाचल प्रदेश की विभिन्न रियासतों तथा ठिकाणों के नामों के आधार पर नामकरण नहीं है। इस ओर शोध की निरन्तर आवश्यकता है। मालवा कलम अपने आप में अद्‌भुत कलम है। यद्यपि विभिन्न कालखण्डों में मालवा की सीमाएँ बदलती रहीं, किन्तु थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ जो मध्यभारत के अंचल थे, वहाँ इस कलम ने अपना पूर्ण उत्कर्ष पाया।

मालवा कलम के संबंध में जानकारी लेने के पहले संक्षेप में मालवा के बारे में जान लेना समीचीन होगा।

यद्यपि महामालव-अवन्ति-जनपद की सीमा के विषय में पुराने ग्रंथों और इतिहासकारों में मत विभिन्नता है, किंतु आज अवन्ति और मालव में किसी प्रकार का द्वैत नहीं माना जाता। इनकी सीमाएँ विन्ध्य के अंचल से लेकर नर्मदा उपत्यका और बेतवा तथा बूंदी की पर्वत शृंखला के अन्तर्गत सीमित मानी जाती है तथा इसका समर्थन भाषा और उसके संस्कारों से भी होता है।

वात्स्यायन ने अवन्ति के रहने वालों को उज्जयिनी देश का निवासी माना है और उन्हीं को अपर-मालवीय (ता एवापरमालव्य:) माना है तथा अपर मालवा के पश्चिम में लाट (गुजरात) को सूचित किया है। नर्मदा, मालव और दक्षिणापथ की प्राकृतिक विभाजक रेखा है, लेकिन बुद्धकाल में माहिष्मती (वर्तमान महेश्वर) के भाग को पश्चिम मालवा कहा गया है। विदिशा के भाग को पूर्व मालव तथा आकर-अवन्ति सूचित किया है और दशपुर को उत्तर-मालवा तथा अवन्ति मध्य मालव के नाम से जानी गई है। मालकम भी आकर-अवन्ति के इस क्षेत्र की अवन्ति मध्य मालव के नाम से जानी गई है। मालकम भी आकर-अवन्ति के इस क्षेत्र की परिसीमा का प्राय: समर्थन करते हैं। विष्णुपुराण में मालव प्रदेश की एकता स्वीकार की गई है।

'कारूषा मालवाश्चेव पारियात्र निवासिन:'

स्कंधपुराण, महाभारत और भागवतकाल में अवन्ति और मालव को अलग-अलग नहीं माना है। वराहमिहिर ने, जिनकी जन्मस्थली कायथा (उज्जैन के निकट एक गाँव) मानी जाती है, उन्होंने मालव का पृथक से उल्लेख किया है तथा इस प्रदेश की नदियों को नाम भी दिये हैं।

पद्मभूषण पंडित सूर्यनारायणजी व्यास का मानना है कि जनसाधारण में माल शब्द ऊँचे भाग को कहा जाता है। सारे देश का मालव-मध्यभाग और प्लेटो होने के कारण ऊँचाई पर स्थित है, इस कारण उसे माल-उन्नत-भूतल (माल-मुन्नत भूतलम्) कहा जाता है। यह स्पष्ट है कि मालव अपने आप में एक स्वतंत्र जाति रही तथा उसका अस्तित्व काफी पुराना है व ईसा पूर्व की आरम्भिक शताब्दियों में रचे गए ग्रंथों में मालव का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल में 1619 ई. में मराठा आक्रमण के पूर्व मालव प्रदेश की स्थितियाँ प्राय: यथावत थीं, किंतु इसके बाद परिस्थितियां बदलीं। सुप्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. रघुवीर सिंह ने मालव सूबे के परगनो की विस्तृत जानकारी जुटाई है। पूर्व मध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल में मुसलमानों और मुगलों के आक्रमणों से मालवा की धरती हिलती रही, किन्तु मालवा की कलात्मक अस्मिता खण्डित होते हुए भी बरकरार रही। अभी भी मालवा की कला परंपरा की टूटी कड़ियों को जोड़ने में डॉ. श्याम सुन्दर निगम जैसे तपस्वी मनीषी निरन्तर साधना रत रहे हैं।

जहाँ तक मालवा की प्राकृतिक सीमाओं के निर्धारण का प्रश्न है, यहाँ की तीन प्रमुख नदियों का योगदान उल्लेखनीय है। इस संबंध में यह प्रसिद्ध दोहा प्रचलित है,

इत चम्बल उत बेतवा, मालव सीम सुजान।
दक्खिन दिसि है नर्मदा, यह पूरी पहचान।।

इन्हीं तीन नदियों के मध्य का विस्तृत और उन्नत भू-भाग मालवा कहलाता है। मालवा का कुल क्षेत्रफल 100868वर्ग किलोमीटर है।

मालवा के बारे में यह दोहा बड़ा प्रसिद्ध है,

मालव धरती, गहन गंभीर,
पग पग रोटी, डग-डग नीर।

इस दोहे से यही ध्वनित होता है कि यह धरती ऐसी सुखमय धरती है, जिसका अपना पुरातन इतिहास है तथा यहाँ भोजन व पानी पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। काशी की तरह उज्जयिनी का, जो मालवा की सबसे पुरानी नगरी है, जिसका अपना इतिहास है।

जहाँ तक चित्रकला का संबंध है, बाघ की चित्रकला (पाँचवीं से छठवीं शताब्दी) मालवा के संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। कालिदास ने मेघदूतम् और रघुवंशम् में चित्रांकन संबंधी अनेकों उल्लेख किए हैं। परमारकाल में चित्रकला का काफी विकास हुआ होगा, किंतु उसके प्रमाण देखने को नहीं मिलते। गोरी और खिल्जी सुल्तानों के आधिपत्य में जब यह क्षेत्र आया और माण्डू राजधानी बनी, तब चित्रकला का विकास हुआ। माण्डू में श्वेताम्बर जैनों ने कलाशैली का विकास किया। माण्डू कल्पसूत्र जो सन् 1439 में बना, यह जगत् प्रसिद्ध है, इसमें जैन धर्म का विवरण देते हुए मनुष्य, पशु-पक्षी, देवी-देवता आदि के चित्र अंकित किए गए हैं। इन चित्रों के विषय धार्मिक हैं, किंतु ये बाहरी प्रभाव से मुक्त हैं। माण्डू में जिस चित्रकला का विकास हुआ उसमें हिरात और शिराज की तुर्कमान शैली का प्रभाव स्पष्ट है। पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में ईरानी कलम का समन्वय भारतीय कलम से हुआ। नियामतनामा में इस शैली के चित्र हैं। सोलहवीं सदी के आरंभ में राग-नागिनियों के चित्र बनने आरंभ हो गए थे तथा नारियों के आभूषण व अलंकरण बहुतायत से बनाए जाने लगे थे। जैन प्रभाव के कारण वर्गाकार सिर, विशाल नेत्र, घूंघट और चित्रित पृष्ठभूमि नारी-चित्रों में दृष्टिगोचर होने लगी थी। बाजबहादुर के राज्यकाल में भी इस शैली के अनेक चित्र बने। इसका प्रचार मेवाड़ और महाराष्ट्र तक हुआ। सत्रहवीं शताब्दी (1634 ई.) में रसिकप्रिया के चित्र बने। सन् 1680 में माधोदास नामक, चितेरे ने नरसिंहगढ़ में एक रागमाला चित्रावली तैयार की, जिसके चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में है। नरसिंहगढ़ के कंवरानी मन्दिर व चम्पावती मन्दिर में अभी भी मालवा शैली के चित्र हैं तथा नरसिंहगढ़ से 12 कि.मी. दूर साखाश्यामजी में सुंदर कृष्ण-लीला के चित्र हैं तथा वहाँ बनी समाधि पर बने विभिन्न शिल्प भी अद्वितीय हैं। राघोगढ़, इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा तथा राजा धीरजसिंह के समय वहाँ बहुत सारे चित्र बने। राघोगढ़ की अपनी विशिष्ट शैली है तथा राघोगढ़ कलम के चित्र विश्व के विभिन्न संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहों में है। मालवा अंचल के उज्जैन, मंदसौर, इन्दौर, धार, रतलाम आदि क्षेत्रों में 18वीं-19वीं शताब्दी में निरन्तर मालवा कलम का विकास हुआ। एकचश्म चेहरे, सुडौल शरीर, सरल आकृति तथा पतली-मोटी रेखाओं से उकेरे गए चित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मराठों के समय में बने चित्रों पर मराठा

प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उज्जैन और मन्दसौर के विभिन्न मन्दिरों और हवेलियों में सुंदर चित्र बने। धार के वैष्णव मंदिरों में भी सुंदर व कलात्मक नाथद्वारा शैली से प्रभावित लघुचित्र रखे हुए हैं। सिन्धिया प्राच्य विद्या शोध संस्थान, उज्जैन में जैन कल्पसूत्र तथा मधुमालती की सचित्र पोथियाँ हैं। बनारस कला भवन में रामायण के विभिन्न प्रसंगों पर आधारित अंकन लघुचित्रों के रूप में हैं। जीवन के सामान्य व्यवहार, कृष्ण-लीला तथा धार्मिक विषयों पर बने चित्र, दरबारी चित्र, आखेट, मंत्रणा, नारी सौन्दर्य, राग-रागिनी तथा विभिन्न काव्य ग्रंथों के आधार पर लघुचित्र बने हैं। व्यक्तिचित्र भी बहुत बने हैं। एकचश्म चेहरे और डेढ़ चश्म वक्ष की रचना प्राय: चित्रों में की गई है। मालवी पहनावा स्पष्ट दिखाई देता है तथा मालवी अलंकरण भी दिखाई देते हैं। इस कलम पर मुगल कलम का प्रभाव भी है। लाल, नीले, हल्के हरे और सुनहरे रंगों का प्रयोग हुआ है। लाल रंग और रामरज रंग की प्रमुख भूमिका रही है।

मालवा की चित्रांकन परंपरा के संदर्भ में अध्ययन करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि भीमबैठका तथा बाघ की गुफाओं के अंकन की निरन्तरता बनी रही तथा मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल में नीमच और जावद से लेकर विदिशा तक विभिन्न स्थानों में जो परंपरा विकसित हुई, उसमें बाघ की गुफाओं के अंकन के तत्व विद्यमान थे।

मालवा कलम पर पश्चिमोत्तर गुजरात शैली का विशेष प्रभाव पड़ा तथा ख़िल्जियों के आधिपत्य में आने के बाद माण्डू चित्रांकन का एक प्रमुख केन्द्र बना। मारवाड़ से गुजरात तथा देहली से आकर माण्डू में बसे श्वेताम्बर जैनों ने तत्कालीन प्रचलित शैली में सचित्र पोथियों को चित्रित कराया। जो कार्य माण्डू में श्वेताम्बर जैनों ने किया, वही कार्य चंदेरी में दिगम्बर जैनों ने किया। माण्डू कल्पसूत्र (1439 ई.) के अंकन की परंपरा देवसानोपादों के चित्रण होने तक निरन्तर विकसित होती रही। इसका काल लगभग 40 वर्षों का है। ओढ़नी की एक विशिष्ट भंगिमा का चित्रण विकसित हुआ। नियमतनामा के अलावा हम्जानामा (1475 ई.) तथा दुर्गापथ (1487 ई.) भी माण्डू में गयासखिलजी के समय चित्रित हुए। अमरूकशतक के चित्र भी यहाँ बने, जो वर्तमान में छत्रपति शिवाजी संग्रहालय मुम्बई में हैं। माण्डू के चितरों ने कुलहदार पगड़ी, जो देहली के चितेरों द्वारा

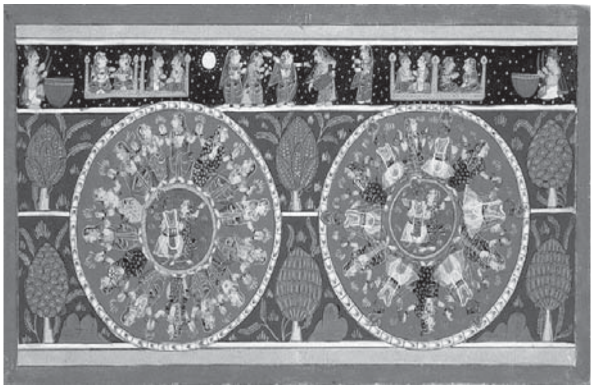

बनाई गई शबीहों में विद्यमान थी, उसका अंकन उन्होंने अपने रूपायनों में किया।

सन् 1630 से 1700 ई. के बीच मालवा में रागमाला चित्रण बहुत हुआ। मालवा कलम के रागमाला पर आधारित चित्र फाईन आर्ट म्यूज़ियम बोस्टन तथा भारत कला भवन में है, जो क्रमश: सन् 1630 ई. व 1650 ई. में बनाए गए थे।

जैसा कि उल्लेख किया गया है इन सब में विशिष्ट रागमाला चित्रांकन सन् 1680 ई. में बनाई गई उस रागमाला के हैं, जो नरसिंहगढ़ के चितेरे माधोदास तथा उसके शिष्यों ने तैयार की थी। इस रागमाला के चित्रों में पुरुष जामा या धोती पहने हुए हैं तथा महिलाओं ने दो प्रकार के लहंगे पहने हैं।

जगदीश मित्तल एवं कमला मित्तल संग्रह हैदराबाद तथा एन.सी. मेहता गैलरी अहमदाबाद, गोपीकृष्ण कनोरिया संग्रह पटना, भारत कला भवन, बनारस, राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली, विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट म्यूज़ियम लंदन, ब्रिटिश म्यूजियम लंदन, लॉस एंजेलिस काउंटी म्यूज़ियम, अमेरिका, फाईन आर्ट म्यूज़ियम बोस्टन में रखे मालवा शैली के चित्र विभिन्न कालक्रमों में इस क्षेत्र में हुए विकास पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं।

मालवा तथा मेवाड़ शैली एक-दूसरे से काफी प्रभावित रही। मालवा की शैली अपने आरंभिक काल में मेवाड़ से प्रभावित रही किन्तु बाद में उसने अपनी स्वयं की मौलिक विशेषताएँ रचीं। यह अपने आप में एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि अभी तक मालवा अथवा सेण्ट्रल इंडियन पेंटिंग के नाम से इस क्षेत्र के चित्रांकनों को पहचाना जाता है, जबकि मोटे तौर पर मालवा के विभिन्न नगरों में उत्तर मध्यकाल में बने भित्तिचित्र तथा गत्तों पर बने लघुचित्र मिलते हैं। नीचम और जावद से लेकर इन्दौर तक तथा उज्जैन से लेकर नरसिंहगढ़ और राघोगढ़ तक यह परंपरा दिखाई देती है। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक जो व्यक्तिचित्र भित्तियों पर उकेरे गए मालवा अंचल में मिलते है, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है-

क्रमांक	शहर	स्थान, जहां भित्तियों पर व्यक्तिचित्र अंकित
1.	नीमच	चौधरी मदन सिंह की हवेली
2.	मंदसौर	सागरमल पोरवाल की हवेली, दारूगाँव के ठाकुर का मकान
3.	रतलाम	कोटावाले बाफना की हवेली, शांतिलालजी बागिया की हवेली, जैन हवेली
4.	उज्जैन	राम जनार्दन मंदिर, तिलकेश्वर मंदिर, चिटणीस मंदिर, सत्यनारायण मंदिर
5.	देवास	चरणदास मंदिर, सीनियर स्टेट राजवाड़ा
6.	धार	वैष्णव मंदिर
7.	मांडू	गदाशाह की दुकान
8.	इंदौर	राजवाड़ा

मालवा के इन विभिन्न स्थानों में बहुतायत से उत्तर मध्यकाल में बने व्यक्तिचित्र मिले हैं। लेखक को जावद में दो सचित्र ग्रंथ मिले हैं, जो 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बने। ये ग्रंथ ढोलामारू तथा लोरिकचंदा हैं। इनमें मेवाड़ कलम के व्यक्ति चित्रण की विशिष्टताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। देवास में व्यक्तिचित्रण की समृद्ध परंपरा उत्तर मध्यकाल में मिलती है तथा अभी भी अनेकों व्यक्तिगत संग्रहों में व्यक्तिचित्र मौजूद हैं। इसी तरह रतलाम में भी यह परंपरा बड़े समृद्ध रूप में विद्यमान रही है। मंदसौर की हवेलियों में भी बहुतायत से व्यक्तिचित्र चित्रित किए गए हैं, एशमॉलियक म्यूजियम ऑक्सफोर्ड में 18वीं शताब्दी का एक सुंदर व्यक्तिचित्र प्रर्दशित है। जो सरूपराम नामक चित्रकार के द्वारा बनाया गया है। इसमें एक राजा को संगीत सुनते दर्शाया गया है।

पूर्व उल्लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि नरसिंहगढ़ में माधोदास व उसके शिष्यों के समय में 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चित्रांकन की उत्कृष्ट परंपरा विकसित हुई थी। इस परंपरा की निरन्तरता बनी रही। यद्यपि लघुचित्र उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु नरसिंहगढ़ के दो मंदिरों में जिन्हें क्रमश: कंवरानी मंदिर तथा चंपावती मंदिर कहा जाता है, की दीवारों पर भित्ति चित्र उपलब्ध हैं। ये चित्र भी उमट शासकों के समय के ही हैं। पूर्व में राजगढ़ तथा नरसिंहगढ़ के राज्य एक ही थे तथा इनके शासक उमट वंशीय राजपूत थे, किन्तु सन् 1681 में राजा परसराम ने नरसिंहगढ़ को बसाया तथा वहाँ एक तालाब बनाया, जिसे पारस सागर के नाम से आज भी जाना जाता है। राजा परसराम की मृत्यु सन् 1695 में हुई। ये भित्ति चित्र भी इसी काल के हैं।

कंवरानी मंदिर की दीवारों पर बने अधिकांश चित्र नष्ट हो गए हैं। वर्तमान में केवल मंदिर की छत पर बने हुए चित्र ही सुरक्षित बचे हैं, जो कृष्ण लीला के हैं। इस मंदिर के गुम्बद की दीवारों पर वृत्त में चित्रकारी की गई है तथा प्रत्येक वृत्त बड़ा आनुपातिक है, जिनमें कृष्ण लीला के अंकन किए गए हैं। इन चित्रों में किले की दीवारें, खुले हुए झरोखे, नीला आकाश तथा सुदृढ़ किला बना हुआ दिखाई देता है। किले की आकृति दो भागों में विभक्त हो गई है तथा इन दोनों भागों के बीच में एक नारी आकृति चित्रित है। इस नायिका ने रंगीन साड़ी पहिन रखी है तथा उसके गले का नेकलेस भी बड़ा स्पष्ट है। उसने जूड़ा बांध रखा है तथा चेहरा गोल है। इस चित्रावली में एक पंडित का व्यक्तिचित्र भी है जो पूर्ण एकाग्रता के साथ बैठा हुआ ध्यानमग्न है। राधा और कृष्ण, ब्रह्मा, पूजा करती मालवी नायिका, गतिमान घोड़े तथा योद्धा इन चित्रों में मौजूद हैं। इन चित्रों पर मेवाड़, कोटा तथा मुगल कलम का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। विशिष्ट प्रकार का मालवी अंगरखा तथा पगड़ का अंकन इन चित्रों की विशेषता है।

कंवरानी देवी के मंदिर की दीवारों पर बने हुए चित्र भी लगभग इसी समय के हैं। एक चित्र विष्णु लक्ष्मी का है, शेषशायी विष्णु शेषनाग पर लेटे हुए हैं तथा उनकी नाभि के ऊपर कमल नाल के उपर ब्रह्मा तथा उनके पांवों के पास लक्ष्मी को अंकित किया गया है। उनके सिर पर मुकुट है तथा चेहरा एकचश्म है। उन्हें एक राजपूत राजा की तरह चित्रित किया गया है, जिनकी मूंछे हैं। भगवान को व्यक्ति के रूप में चित्रित करने की परंपरा इन अंकनों में दिखाई देती है। लक्ष्मी का अंकन विशेष रूप से बड़ा आकर्षक है। उनकी भौंह, आंख, नाक, ओठ तथा अधरोष्ट बूंदी नायिका की तरह चित्रित किए गए हैं। पार्वती के पीछे गणेश हैं, उनके हाथ में एक प्याला है तथा वे अपनी सूंड़ पर एक लाल झण्डे को धारित किए हैं। यह एक विशिष्ट लक्षण है, जो भारतीय लघुचित्रों में बनाए गए गणेश में नहीं मिलता। एक चित्र शिव दरबार का है, जिसमें कैलाश पर्वत पर शेर की खाल पर शिव विराजे हैं। उनकी जटाओं से बहती गंगा का प्रवाह बड़ा कलात्मक है। शिव के गणों का अंकन भी बड़ा सुंदर है। शिव दरबार के बाजू से राम, सीता तथा हनुमान के सुंदर व्यक्तिचित्र अंकित किए गए हैं। राम को भी किसी राजपूत शासक की तरह चित्रित किया गया है, जिनकी मूंछे हैं। हनुमान का अंकन इन अर्थों में विलक्षण है कि उनकी देह दुबली है तथा उन्होंने अपने सिर पर एक टोपी धारण कर रखी है। एकचश्म सीता का अंकन भी बड़े सुंदर रूप में किया गया है। उनके एक हाथ में पुष्प है तथा दूसरे हाथ से वे अपना पल्लू संवार रही है। उनकी पूरी देहयष्टि अलंकृत है। सीता, लक्ष्मी तथा पार्वती के अंकन बहुत सुंदर हैं। इन अंकनों में लाल, नीले, पीले तथा सफेद रंगों का उपयोग किया गया है।

नरसिंहगढ़ की यही परंपरा परवर्ती काल में एक सामासिक शैली के रूप में नरसिंगढ़ से 20 कि.मी. दूर साखा श्यामजी की समाधि के पास बने कक्ष के चित्रों में दिखाई देती है। ये चित्र 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हैं। अभिलेख के अनुसार सन् 1787-1788ई. में यह जागीर रावत पर्वतसिंह ने भगली पण्डी नामक एक राजपूत स्त्री को दी

थी, जिसने अपने पति की स्मृति में ये चित्र बनवाये। वेणु वादन करते कृष्ण, युद्ध दृश्य, रैदास के समक्ष बैठी मीरा, गजलक्ष्मी, योद्धा, पहलवान, जैन संत, नृसिंह अवतार, ढोलामारू तथा समुद्र मंथन के अंकन बड़े प्रसिद्ध हैं। एक अनुमान यह भी है कि ये अंकन संभवत: 1840 से 1850 ई. के बीच किए गए होंगे। क्योंकि इन पर ब्रिटिश प्रभाव अत्यधिक है। कृष्ण का एक चित्रांकन ऐसा है जिसमें बंदूक लिए हुए दर्शाए गए हैं। यह शैली समग्रता में मालवा की लोकशैली के एक समन्वित स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है।

नरसिंहगढ़ से लगी हुई एक छोटी सी स्टेट राघोगढ़ है। यह कोटा के दक्षिण में अवस्थित है तथा इसकी चित्रांकन परंपरा पर बूंदी तथा कोटा कलमों, विशेषकर कोटा कलम का प्रभाव रहा।

राघोगढ़ की चित्रांकन परंपरा पर कोई महत्वपूर्ण शोधकार्य अभी तक नहीं हुआ है किन्तु इस कलम के चित्र विलक्षण हैं। राघोगढ़ के संस्थापक राजा लालसिंह के लड़के राजा धीरजसिंह का सर्वाधिक झुकाव चित्रांकन पर ही था। एक व्यक्तिचित्र में वे माला फेरते हुए दर्शाए गए हैं तथा उनके सामने एक बना हुआ चित्र तथा चित्रांकन की सामग्री मौजूद है। उनके दरबार में राग-रागनियों तथा विभिन्न पारंपरिक प्रसंगों के आधार पर बहुतायत से चित्रांकन हुए। रामायण तथा भागवत भी चित्रित किए गए। भगवान राम के अनुयायी होने के कारण राम दरबार के सुंदर अंकन राघोगढ़ कलम में हुए।

जंगल तथा पहाड़ों की बहुलता के कारण शिकार करने की परंपरा राघोगढ़ के शासकों में रही तथा राजा धीरजसिंह के समय में उनकी कई शबीहें बनीं, जिनमें उन्हें शिकार करते दर्शाया गया है। उनकी पासवान ऐश्वर्यजी थीं, जिन्होंने राग-रागनियों के चित्र बनाए। राजा धीरजसिंह के समय में धीरपुर ग्राम में चतुर्भुज मंदिर की दीवारों पर सुंदर चित्र बने। ये भित्ति चित्र अभी भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मौजूद हैं।

राघोगढ़ कलम के चित्रों की यह विशेषता है कि उनमें अनुपात का विशेष ध्यान रखा गया है। इस कलम के चित्र पूरे विश्व भर के व्यक्तिगत संग्रहों तथा संग्रहालयों में मौजूद हैं। इनमें से प्रमुख हैं- राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली, एन.सी. मेहता गैलरी अहमदाबाद, भारत कला भवन बनारस, गोपीकृष्ण कनौरिया संग्रह पटना, बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी बड़ौदा, जगदीश मित्तल एवं कमला मित्तल संग्रह हैदराबाद, विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट म्यूजियम, ब्रिटिश म्यूजियम, इण्डिया ऑफिस कलेक्शन, सेन्सीबरी संग्रह लंदन, चेस्टर बेट्टी लायब्रेरी डबलिन, बोस्टन म्यूज़ियम, ब्रूकलिन म्यूज़ियम, मेट्रॉपॉलिटिन म्यूज़ियम न्यूयार्क आदि। मुझे एक सुन्दर राघोगढ़ क़लम का चित्र डॉ. जिम मेसेलोस, सिडनी विश्वविद्यालय के व्यक्तिगत संग्रह में भी देखने को मिला, जिसकी सधी हुई रेखाएँ तथा चमकदार रंग सहज आकृष्ट करते हैं।

इन चित्रों की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे वहाँ की स्थानीयता से गहरे रूप में प्रभावित हैं। उनके विषय यद्यपि परंपरागत हैं किन्तु जो व्यक्तिचित्र हैं, वे बड़े जीवंत है। पृष्ठभूमि में राघोगढ़ का स्थापत्य विशेष रूप से देखा जा सकता है।

माण्डू से लगी हुई ऐतिहासिक नगरी धार के पुष्टिमार्गी मंदिरों में जो चित्र लगे हैं, वे भी उत्तर मध्यकाल में बनें चित्र हैं तथा अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वे इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि वे चित्र संभवत: धार में ही बने, जिनके विषय नाथद्वारा क़लम के थे, किन्तु जिन्हें स्थानीय चितेरों के साथ मिलकर नाथद्वारा क़लम के चितेरों ने बनाया। स्थानीयता के प्रभाव के चलते इन पर मराठा प्रभाव बड़ा स्पष्ट है। धार में मुख्य रूप से तीन वल्लभ सम्प्रदाय के मंदिर हैं। इनमें से एक मंदिर श्रीगोवर्धननाथ जी का मंदिर है, जिसमें अनेको चित्र हैं। एक चित्र में पुराणिकजी (शास्त्रीजी) को मराठी पगडी पहने दर्शाया गया है। एक मंदिर मदनमोहनजी का है, जिसमें जमुनाजी का सुंदर चित्र मौजूद है। बालकृष्णजी के मंदिर में जिसे दाईजी का मंदिर भी कहा जाता है, उसमें झूला दृश्य का लघुचित्र है। वहाँ के अन्य व्यक्तिगत संग्रहों में भी इसी प्रकार के अनकों चित्र मौजूद हैं।

माण्डू, धार, नरसिंहगढ़ तथा राघोगढ़ व चंदेरी के अतिरिक्त पश्चिमी मालवा में नीमच, जावद, मंदसौर, रतलाम, उज्जैन, इन्दौर तथा देवास में विशेष रूप से मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल में चित्र बने हैं। इन चित्रों के विषय परंपरागत तो थे, किन्तु इन पर मुगल कलम के साथ-साथ राजस्थान की विभिन्न शैलियों का भी प्रभाव था। अब मालवा कलम के चित्र सहज ही मोटे तौर पर पूर्वी और पश्चिमी मालवा के रूप में तो कम से कम पहचाने ही जा सकते हैं।

उज्जैन में चित्रांकन की समृद्ध परम्परा बड़े प्राचीनकाल से रही। वर्तमान में कोई पुराने चित्र यहाँ नहीं मिलते। लेखक को 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 19वीं शताब्दी में बनाए गए कुछ लघुचित्र व्यक्तिगत संग्रहों में देखने के लिए मिले हैं, जिनकी विशेषता यह है कि वे ज्योतिष के विषयों पर बनाए गए हैं। एक लघुचित्र में हथेली की रेखाओं को बड़े सुन्दर आकार में चित्रित किया गया है तथा ज्योतिष से संबंधित संकेतों को भी उकेरा गया है। इसी प्रकार उज्जैन में मिले लघुचित्रों में कुछ ऐसे लघुचित्र भी हैं, जो चितेरों के आध्यात्म बोध का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे आधुनिक युग के अमूर्त रूपांकनों को हम देख रहे हों। यहाँ जो भी चित्र वर्तमान में उपलब्ध हैं, वे भित्तिचित्र हैं, जो प्राय: मन्दिरों में हैं।

इस विहंगावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अभी भी मालवा शैली के संबंध में पूर्ण अनुसंधान किया जाना शेष है।

आज यही सबसे अधिक प्रासंगिक तथ्य है कि मालवा कलम की पहचान के लिए पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ युवा शोधार्थी अपनी सामर्थ्य को प्रकट करें तथा उस महान-वैभव को उद्घाटित करें जो मालवा कलम के रंगों और रेखाओं में समाविष्ट है।

- 85, इंदिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केसरबाग रोड
इंदौर-9 (म.प्र.), मो. 9425092893

■

आलेख

काव्य एवं चित्रकला का अंतर्संवाद : बिहारी सतसई के संदर्भ में

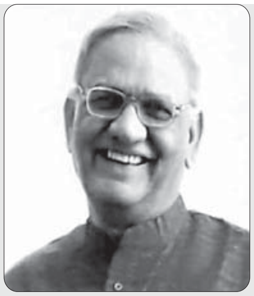

श्यामसुंदर दुबे

कलाओं के सृजन का मूल एक ही रचनात्मक केद्र है। इस केन्द्र से सृजन ऊर्जा का उद्वेग-स्फुरण विभिन्न कला माध्यमों के संदर्भ में एक-सा आवेग लेकर अभिव्यक्ति के विन्यास स्तर तक सक्रिय बना रहता है। यह केन्द्रीय ऊर्जा ही कलाओं के अंतर्संवाद के अवसर सिरजती है। व्यक्तित्व परिस्थिति कौशलगत संस्कार आदि अनेक कारक इस ऊर्जा की परिणति को विभिन्न कला माध्यमों को निर्धारित करते हैं। एक आवेग प्रवाह कल्पना सरणियों की विभिन्नता के आधार पर अपनी रूप रचना का स्थापत्य तय करता है। मूर्त से लेकर अमूर्त तक की अभिव्यक्ति प्रणालियों में कल्पना की भूमिका बिम्ब संधारण के सिलसिले में महत्वपूर्ण होती है। वस्तु दृश्य और क्रियात्मक अनुचेष्टाओं का नियमन करती कल्पना ऊर्जा यद्यपि विभिन्न रूपाकारों में प्रकट होती रहती है- किन्तु कला-मर्म के अंतराल में निहित संवेदन स्पंदनों में यह सभी कलाओं में कुछ-कुछ एक ही होती है। इसी ऊर्जा की भनक और ठनक को सुनना-देखना ही कलाओं के अंतर्संवाद का प्रारंभिक अनुवाद है।

चित्रकला और कविता को आधार बनाकर इस प्रकार का अंतर्संवेदी विश्लेषण अनेक तरह से संभव हुआ है। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल इस तरह की कलात्मक संयोजना का उर्वर काल है। इस युग में काव्य चित्र-रचना और स्थापत्य का परस्पर प्रभावी परिसर निर्मित हुआ है। कविता को आधार बनाकर चित्रकारों ने एक संपूर्ण दृश्यालोक से भरापूरा संसार इस युग में निर्मित किया है। अनेक कवियों की रचनाओं को केन्द्र बनाकर इस युग के चित्रकारों ने अपनी कला के फलक को संवारा है। बिहारी कविकृत 'बिहारी सतसई' के दोहे अनेक चित्रकारों के चित्रों के उपजीव्य रहे हैं। बिहारी के दोहे अपने लघु कलेवर में विस्तृत परिवेशगत घटनाक्रमों क्रियात्मक चेष्टाओं और भावगत रंग-छवियों से परिपूर्ण हैं। ये विशेषताएँ चित्रकारों को आकर्षित करती रही है।

रीतिकाल, शृंगार की प्रवृत्तियों का 'उन्मोचक काल है। बिहारी शृंगार के अद्वितीय कवि माने जाते हैं। उनके कुछ दोहे 'जल-केलि' से संबंधित हैं जल क्रीड़ा शृंगारिक क्षेत्र में कवियों को लुभाने वाली रही है। रूप, क्रिया और आभा की तरलता का संभार जल क्रीड़ा को जो दृश्य छवि प्रदान करता है, वह गतिज ऊर्जा से संचरित होकर आकर्षण का केद्र बन जाता है। जल की गतिशीलता, उसकी रंगपरिवर्तन की क्षमता, उसकी ऋजुता और भंगिमा तथा उसका मार्दव क्रीड़ापरक प्रसंगों में सरसता की क्षमता प्रदान करने वाले गुण हैं।

बिहारी का एक दोहा है। **''लै चुभकी चलि जाति जित जित जल-केलि-अधीर। कीजत केसरि-नीर से तित तित के सरि नीर।।** यह जल, केलि करती नायिका को इंगित करता वर्णन है। जल-केलि में अधीरतापूर्वक संलग्न नायिका जिस ओर डुबकी लेकर चली जाती है उस ओर नदी के जल का रंग केसरिया हो उठता है। लगता है, जैसे जल में केसर घुल गया हो। चयन का अधिकार चित्रकार का है। उसकी भावात्मक सन्निधि ही इस चयन में उसका सहयोग करती है। यही वह बिन्दु है- जिसने इस दोहे को केन्द्र बनाकर चित्र-रचना हेतु प्रेरित किया। कवि और चित्रकार की सृजनात्मक मेधा का यह पारस्परिक अनुबंध न तो रचना का अनुवाद है, न रचना का चित्र पाठ है- बल्कि यह सर्जक द्वारा एक रचनात्मक इकाई की तरह रचनाकार की प्रतिक्रियात्मक स्वायत्तता का निदर्शन है। इस दोहे को दतिया कलम ने एक चित्र-रचना के रूप में प्रस्तुत किया है।

दतिया की चित्र-संरचना में रंग ठोस होते हैं। उनमें गाढ़ापन झलकता है। इन गाढ़े रंगों में उजास का अवतरण चित्र को विभिन्न शेड्स देकर प्राकृतिक परिवेश में ढाल देता है। जल, थल और आकाश के त्रिस्तरीय फलक को प्रदर्शित करने वाले चित्र में दोहे की जैसे पुनर्रचना करते हुए चित्रकार ने रंगों, रेखाओं और कूंचीगत आघातों से अपनी कल्पना को विस्तार दिया है। दोहे में कवि का लक्ष्य नायिका की अंगकांति का आलंकारिक संप्रेषण है। उसके शरीर की केसर जैसी रंगत जल केलि के संदर्भ में नदी-जल को केसरिया कर रही है। दोहे में परिवेश का संकेत नहीं है- यह संभव भी नहीं था, किंतु रचना के स्तर पर चित्रकार ने इसे संभव किया है। नदी, नदी का किनारा, किनारे से जुड़ती क्षितिज रेखा और आकाश। वृक्ष, वीरूधि और घास के किनारे की जमीन की जीवंतता और पुष्प श्रेणी के विकास से वातावरण की प्रसन्नता का अभिप्राय प्रकट होता है। क्षितिज की लहराती ज्योतित पट्टिका और आकाश में घिरती श्यामता से मेघेमेंदुर्मबरं का आभास कराती रंग-रचना उजास का अद्‌भुत आलोक सिरजती है। नदी का जल उस परिवेश में द्विरंगी है। संपूर्ण नदी में सांवला जल प्रवाहित है। कालिंदी नदी जो ठहरी! नदी से कंचुकी विहीन नायिका जल केलि में निमग्न है। कवि बिहारी अपने स्वल्प शब्दों में जित जित और तित तित का तालमेल प्रस्तुत करते हैं। जल से नायिका डूबती है- फिर प्रकट होती है, और इसी क्रम में वह जल में अग्रसारित है। इस क्रिया व्यापार को प्रदर्शित करने में चित्रकार ने नायिका की दो छवियों को तैरने की गतिशीलता में कुछ इसी क्रम में रखा है कि वह डुबकी लगाकर जल के ऊपर आती है और आगे बढ़कर फिर डुबकी लगाने सन्नद्ध है। यह सातत्य एक ही नायिका की गतिशील दो छवियों से प्रकट होता है।

कवि-अभिप्रेत रंग विपर्यय को चित्रकार ने नायिका के इर्द-गिर्द केसरिया रंग की एक मध्यवर्ती धार को रचा है। इस धार मे चित्रकार ने नायिका के तैरने से बनते लहरों के विवर्तन से स्पष्ट किया है कि जैसे केसरिया रंग का स्रोत नायिका का शारीरिक वर्ण ही है उसकी अंग कांति की उजास से ही नदी का मध्यवर्ती हिस्सा केसरिया हो उठा है। जल में उछाल लेती नायिका का अधोभाग जैसे जल में ही घुलमिल गया है। पीत लहँगा और उजासपूर्ण गौरवर्ण मिलकर जल के स्तर पर केसरिया आभा झलका रहे हैं। दृश्य विधान में चित्रकार ने जल-केलि में एक और सखी की अवतारणा की है। ये सखी कत्थई रंग का लहँगा पहने है। यह नदी में उतरने का दृश्य है, इसलिए नदी का रंग यहाँ साँवला है। किनारे पर नायक कृष्ण और नायिका राधा संवादरत हैं। किनारे पर ही जल-केलि में रत नायिका की कंचुकी ओढ़नी आदि वस्त्र रखे हुए हैं। यह चित्र मानो फ्लेश बैक के रूप में कृष्ण-राधा की स्मृति को ताज़ा करता है। किनारे पर खड़े कृष्ण की स्मृति में जैसे जल-केलिरत राधा का बिम्ब ही प्रकट होता है। एक चश्मी गोल सुडौल मुख वाले चित्रों की शैली बुंदेली कलम की पहचान बरकरार रखे हैं। रंगों का कन्ट्रास्ट और रंगों का वैविध्य चित्र को आकर्षक बना रहा है। आँगिक भंगिमाओं में क्रियात्मकता प्रसंगानुकूल है।

इस चित्र में चित्रकार की मौलिक दृष्टि चित्र में सर्वत्र प्रकट पीताभ में दृष्टव्य है। किनारे की वनस्पतियाँ जैसे इस पीताभा से स्नात हो उठी हैं। इन पर पड़ती पीत उजास को वनस्पतियों की शिरोरेखाओं की पीत चमक में स्पष्टत: अनुभव किया जा सकता है। क्षितिज पर और क्षितिज पार भी इस पीताभा का अनुमान लगाया जा सकता है। यह उजास-विन्यास किनारे पर खड़ी राधा की आभा-कांति से उत्सर्जित है। दीर्घ और आयत नेत्र, किंचित लंबोत्तर माँसल नासिका, पतली कमर और लमछार केश राशि की नायिकाएँ आकर्षक और भव्य रूप विधान रचती हैं- लगभग बिहारी की काव्य-उन्मेदी नायिकाओं की तरह! बुंदकियों और तूलिकाघातों का सधा कौशल चित्र की बारीकियों की ओर संकेत करता है।

शब्द की सीमा है किन्तु उसमें निहित अर्थ का विस्तार असीम है। इसी असीम के साथ बरतना सहृदयों का लक्ष्य रहता है। यदि सहृदय कला विदग्ध और स्वयं कलाकार हो तो वह अपनी कल्पना का विस्तार अपने कला माध्यम में करता है। बिहारी के दोहे पर केन्द्रित यह चित्र-संरचना न केवल अर्थ-विस्तार करती है, बल्कि दोहे के नये-नये संदर्भ खोलता है। यह चित्रकार का अपना संसार जरूर है, किंतु बिहारी के कवि के साथ अंतर्संवाद करता दोहे की चित्रात्मक प्रस्तुति अनखुले अभिप्रायों को खोलती है।

दूसरा दोहा जल-केलि के उपरांत जल अभिषेकित जल में ही अवगाहित नायक-नायिका जो कि राधा-कृष्ण के रूप में हैं- व्यक्त

हो रहे हैं। वे दोनों शीतकाल में स्नान उपरांत जलाशय में खड़े जप करने के ब्याज से एक दूसरे को तिरछी दृष्टि से निहार रहे हैं। यह प्रेम के अनवरत होने का प्रकरण है। जप सतत है और दृष्टि-अभिसार भी सतत है। बिहारी का दोहा दृष्टव्य है- **''चितवन जितवत हित हियैं, कियैं तिरीछे नैन। भींजै तन दोऊ कँपै क्यों हू जय निबैं न।''** अपने हृदय का परस्पर प्रेम स्पष्ट करने के लिये तिरछे नेत्रों से एक दूसरे को निहारते हुए दोनों जल में खड़े काँप रहे हैं- उनका जप समाप्त नहीं हो रहा है। दोहा में पारस्परिक प्रेम की चेष्टाओं और अनुभवों का केन्द्रीय स्थान है।

इस दोहे पर केन्द्रित चित्र भी दतिया कलम का है। इसकी पृष्ठभूमि भी जल, थल और आकाश की व्याप्ति वाली है। यह परिवेश-गत व्याप्ति ऋतु विशेष के प्रभवांकन वाली है। शीत ऋतु में हिम प्रवषित स्थिर हवाओं से शांत और उज्ज्वल आकाश की ऊपर उठती-सी वलयाधारित क्षितिज रेखा पर उभरती उजराई शीत ऋतु के चमकते-से आकाशीय आचरण को स्पष्ट करती है। वृक्षों और अन्य वनस्पतियों में छायाभास के रूप में घिरी हुई कालिमा जो कि दिवस की लघुता का भी संकेत करती है। थोड़ा-सा गाढ़ा हरापन, फूलों का श्रेणी-विकास और सरोवर का ठहरा जल। यह जल ठहराव काले रंग के प्रभाव से एकदम ठोस-सा हो गया है। इस परिवेश में व्यक्ति-चित्रण के अंतर्गत तीन क्रियात्मक दृश्यांकन इस चित्र के घटनापरक प्रसंगों के रूप में चित्रित किए गये हैं। सरोवर के किनारे पर दो सखियाँ परस्पर इस प्रसंग का निदर्शन कर रही हैं। लाल परिधान धारण करने वाली सखी सीधे-सीधे मुखातिब है, जबकि श्वेत परिधानी सखी मुड़कर संवाद रत हो रही है। दोनों की मुखमुद्रा समुत्सुकता से परिपूर्ण है। सरोवर के जल में क्रीड़ा लीन राधा-कृष्ण आमने-सामने हैं। जल में तैरते इनकी हस्त चेष्टाएँ संतरण मुद्रा में हैं। दृष्टि निफलक है। आँखों में आँखें डालकर दोनों एक दूसरे को निहार रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे जल में ही एक दूसरे को आलिंगन में कसना चाहते हैं। आलिंगनबद्ध होने की तीव्र आतुरता उनके भीतर है। कालेजल में चित्रकार ने जल केलिरत कृष्ण पर ही फोकस किया है। आंतरिक प्रसन्नता के विस्फार को सरोवर में खिल रही शुभ्र सरसिज श्रेणी जैसे अभिव्यक्त कर रही है। दोहे में इस संपूर्ण दृश्य का उल्लेख नहीं है, किंतु भींगे तन दोऊ कँपे के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि दोनों सरोवर में पर्याप्त समय तक जल क्रीड़ालीन रहे हैं, तब शरीर भींगा है और कँपने की क्रिया का उदय हो गया है। चित्रकार ने इस पूर्वरंग और पूर्व राग को चित्रांकित किया है। दोहे में निहित प्रसंगगर्भिता को चित्रकार अपनी तूलिका के माध्यम से अपनी कल्पना धर्मिता के बल पर प्रकट करता है।

सरोवर की कगार के एकदम पास में घुटनों डुबान जल में एक सामान्य फासले पर जल से भींगे और कांपते शरीर वाले राधा-कृष्ण खड़े हुए हैं। फासले के बीच में किनारे का छोटा-सा हिस्सा तालाब में आ गया है। ये दोनों अधोवस्त्र भर पहने हैं। दोनों अधोवस्त्र का रंग पीला है। कृष्ण का पीतांबर और मुकुट किनारे पर कृष्ण की दिशा में रखा है जबकि राधा का अंतर्वस्त्र और दुपट्टा राधा की दिशा में रखा है। दोनों की हस्तमुद्राओं के माध्यम से शरीर के कँपने का आभास होता है। एक की हथेली वक्ष पर हैं और दूसरे हाथ की हथेली काँछनी के हिस्से के नीचे मुड़ी हुई है। यह मुद्रा स्पष्ट करती है कि वे काँपते शरीरों को हाथों से संभाले हैं। यद्यपि यह हस्तमुद्रा जप करने की है।

इस चित्र-प्रसंग में राधा और कृष्ण के नेत्र सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। चित्रकार ने सुडौल चेहरे पर दोनों के दोनों नेत्रों को चित्रित किया है। दोनों का एक-एक नेत्र चेहरे की बाह्य परिसीमन रेखा से सटा हुआ है। तिरछे नैनों से एक दूसरे को इकटक देखने की क्रिया को चित्रकर ने कुशलता के साथ उकेरा है। दोनों के चेहरे आंतरिक प्रसन्नता से भरपूर हैं। भीतर का संपूर्ण अनुराग जैसे वे इस दृष्टि अभिसार के माध्यम से प्रकट कर रहे हैं। चित्रकार ने पृष्ठभूमि में मद्धिम-मद्धिम झिलमिलाते सितारों की आकृतियों के द्वारा वातावरण की प्रसन्नता को नया आयाम दिया है। राधा-कृष्ण के इस दृष्टि-निक्षेपण में दुराव की एकांतिकता भी है।

बिहारी के इन दोहों की पुनर्रचना करते हुए चित्रकार ने काव्य की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए अपनी कल्पना में दोहों के भीतर स्पंदित घटनाक्रमों को एक आकार देते हुए रंगों, रेखाओं और आघातों के माध्यम से काव्य और चित्रकला के अंतर्संबंधों को कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। दोनों चित्र एक ही चित्रकार के रचे प्रतीत होते हैं।

श्री चंडी जी वार्ड, हटा (दमोहा) म.प्र.-470775

चित्र- श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय के सौजन्य से

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें!

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

आलेख

झालावाड़ की अचर्चित चित्रांकन परम्परा

ललित शर्मा

रेत कितनी संवेदनशील हो सकती है और रंगों तथा रेखाओं को समन्वित कर उन्हें चित्रांकन की एक अनूठी और जीवन्त यात्रा का साक्षी भी बना सकती है, इस तथ्य को राजस्थान की भूमि ने सिद्ध किया है। इस भूमि ने न केवल भारतीय चित्रकला के इतिहास में अनूठे अध्याय रचे, अपितु समूचे विश्व में अपनी कलात्मकता के विलक्षण मूर्तिनो को भी स्थापित किया है।

इसी राजस्थान के हाड़ौती अंचल में मध्य तथा उत्तर मध्यकाल में बूंदी और कोटा में चित्रकला की शैलियों का सुदीर्घ विकास हुआ तथा इन्हीं शैलियों की एक उपशैली के रूप में झालावाड़ कलम की चित्रांकन परम्परा, जिसकी अपनी विशेषताएँ रहीं, भी पल्लवित हुई, परन्तु दुर्भाग्यवश राजस्थान की संस्कृति में उसका विश्लेषण न होने से वह अब तक अछूती, अप्रकाशित व अचर्चित ही रही। झालावाड़ के शासक जहाँ एक ओर अपने शौर्य और सत्कार्यों के कारण विख्यात रहे, वहीं दूसरी ओर वे कलाप्रेमी भी रहे। यद्यपि बून्दी और कोटा की चित्रकला की अपनी विशेषताएँ हैं, किन्तु झालावाड़ कलम की चित्रांकन परम्परा की विशिष्टिता यहाँ के गढ़ भवन, पुरा संग्रहालय, कोठी पृथ्वी विलास, श्रीनाथजी की हवेली तथा व्यापारिक फर्म सेठ बिनोदीराम-बालचन्द की विशाल हवेली, बिनोद भवन झालरापाटन में आज भी हैं, जो अपने आप में अपूर्व है तथा उसका अपना पृथक से निजस्व भी है।

महारास

बून्दी कलम जहाँ नारी सौन्दर्य के अंकन के लिए प्रख्यात मानी जाती हैं, वहीं कोटा कलम शिकार दृश्यों के बहुतायत के लिए जानी-मानी जाती है, परन्तु इन दोनों का समन्वय और परिष्कार यदि स्पष्ट रूप से देखना है तो वह झालावाड़ कलम में दिखाई देता है, जो 19वीं सदी के आरम्भिक दशकों की पनपी चित्र शैली के उत्कर्ष का राजस्थान एवं आसपास के प्रदेशों की कला में विराट आख्यान करती है।

1938ई. में स्थापित झालावाड़ राज्य का गढ़ पेलेस यहाँ के शासक महाराजा मदनसिंह झाला के काल में सन् 1840 ई. से निर्मित होता हुआ लगभग 1872 ई. में पूर्ण हुआ। इस राज्य में सन् 1899 ई. से 1929 ई. तक के समय में कलाप्रिय एवं विद्वान नरेश महाराजा भवानीसिंह का शासन रहा। उन्हीं के समय यहाँ भवानी नाट्यशाला, पुरातत्व संग्रहालय आदि सांस्कृतिक धरोहरों का निर्माण हुआ, वहीं चित्रांकन परम्परा का भी तीव्र गति से क्रमिक विकास हुआ। उन्होंने इस कला परम्परा को अपनी रुचि के कारण पुरजोर संरक्षण दिया। उन्होंने नाथद्वारा शैली के प्रख्यात चित्रकार पं. घासीराम शर्मा, पं. ओंकारलाल शर्मा, पं. प्रेमचन्द शर्मा को झालावाड़ बुलाकर बसाया और उनसे गढ़ भवन के कक्षों तथा कोठी हवेलियों की भित्तियों पर स्वर्ण मिश्रित रंगों से ऐसे सुन्दर मनोहारी और मुँह बोलते चित्र बनवाये, जिन्हें देखकर आज भी सात समन्दर पार के पर्यटक तथा इतिहास एवं कला समीक्षक दाँतों तले अंगुली दबा लेते हैं।

गढ़ भवन के कंवरपदा महल तथा पूर्व पुलिस अधीक्षक कार्यालय के कक्षों में बने ये भित्ति चित्र विविध विषयों के हैं। इनमें विशेष रूप से जो गवक्ष तथा आदमकद व्यक्ति चित्र हैं, वे झालावाड़ राज्य के राजाओं सहित तत्कालीन राजपूताना की अन्य रियासतों के शासकों के हैं। ये चित्र काँच पर जड़े हुए हैं, जो अन्दर की ओर बनाये गये हैं, फिर यहां की भित्तियों पर ठोस तरीके से इन्हें चिपकाया भी गया हैं, इन कक्षों की छतें पूरी तरह से बेलबूटों तथा सुन्दर स्वर्ण युक्त रंगों के अलंकरणों से चित्रित हैं। इनमें शबीह चित्रों को चित्रित करते समय चित्रकार ने उस युग के वातावरण, अलंकरण और शाही वेशभूषा को पूरी बारीकी और मनोयोग से उकेरा है। इन चित्रों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें राजपूताना व उससे जुड़े विभिन्न भारतीय राज्यों रजवाड़ों में पहनने वाली शाही पगड़ियों को उनके नरेशों के शीश पर शुद्ध स्वर्ण व अन्य

रंगों से उकेरा गया है। इनके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पहाड़ी कलम में चम्बा और गुलेर तथा मालवा के राघोगढ़ की चित्रांकन परम्परा में जो पगड़ियां उकेरी गईं उनसे भी झालावाड़ के ये चित्रकार प्रभावित हुए हैं। इसके साथ ही विभिन्न भंगिमाएँ भी यहां के चित्रों में दिखाई देती हैं, जैसे कहीं शासक अकेले ही हुक्का पी रहे हैं तो कहीं हुक्का पीते वृद्ध शासक के समक्ष दरबारी बैठे हैं। हाथ में तलवार लिए शासकों के कई चित्र हैं। एक चित्र में राजा अपनी रानी से गम्भीर विचार-विमर्श में निमग्न दिखाई देते हैं। एक आदमकद शबीह में झालावाड़ के युवा शासक झाला जालिमसिंह (द्वितीय) को पारदर्शक व झीने वस्त्र का लम्बा कुर्ता पहने हुए इतने जीवन्त भाव से चित्रित किया गया है कि निष्णात कलाविद् भी उस कुर्ते को वास्तविक-मान छूने की भूल पर बैठते हैं। इन चित्रों के ऊपर एक विशिष्ट चित्र झालावाड़ के शाही इन्द्र विमान की सवारी का बड़ी सुन्दरता लिए है। इसमें शाही इन्द्र विमान को दो विशाल और काले हाथी खींच रहे हैं, जिनके आगे पीछे अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित फौज-पल्टन है तथा मार्ग के किनारे स्थित मुख्यालय झालावाड़ (छावनी) की वैभवशाली हवेलियों, भण्डारों, पंथों एवं व्यवस्थित बाजारों के चित्र अनेक चितेरों ने बनाए हैं। इनमें शाही आभूषणों को स्वर्ण रंगों से चित्रित किया गया है। लन्दन के डॉ. राकेश सिन्हा के संग्रह में एक मनोहारी चित्र का अंकन झालावाड़ कलम का है। इस चित्र में झाला जालिमसिंह (प्रथम) ऊँटनी पर सवार है, जो दौड़ी चली जा रही है। इसकी गतिशीलता अद्‌भुत है। राजस्थान की शैलियों में ऐसा चित्र कहीं नहीं है।

यहाँ विभिन्न शासकों के चित्रों के ऊपर विभिन्न चित्रों में विभिन्न पौराणिक अवतारों के सुन्दर चित्र भी बड़ी सुघड़ता के साथ बनाये गये हैं। इन पृथु अवतार, हंस अवतार, मनु अवतार, ऋषभ अवतार सहित कलियुग में होने वाले कल्कि अवतार तक का चित्रण कलाकार ने प्रसिद्ध तीर्थ बद्रीनाथ धाम के साथ बड़ी ही सुन्दरता से किया है। इन चित्रों में कुछ प्रमुख चित्र कम्पनी (ब्रिटिश) शैली के हैं, जो राजस्थान तथा मालवा की अन्यत्र शैली में दिखाई नहीं देते। इसमें

चित्रशाला झालावाड़

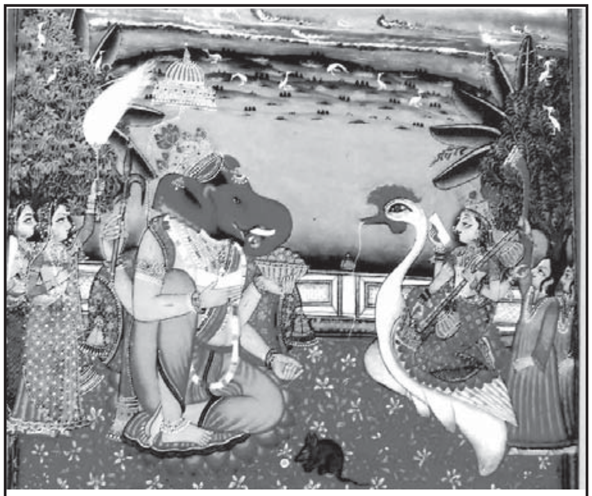

गणेश एवं सरस्वती

एक विशाल शाही जुलूस का सुन्दर दृश्य, जिसमें सैनिकों की वेशभूषा व पतलून तथा उनके हाथों में बन्दूकों का चित्रण कम्पनी शैली का है। परन्तु इस चित्र में जिन हाथियों का लोक लुभावन चित्रण है, वह कोटा कलम के हाथी चित्रों से भिन्न है। इन्हीं चित्रों में गजयुद्ध की व्यूह रचना का एक चित्रण बड़ा ही प्रभावी है। इसका माप 3 गुणा 10 सेन्टीमीटर है। गजयुद्ध का ऐसा भव्य चित्र राजस्थान की अन्य चित्र शैलियों में सर्वथा अनूठा है। वास्तव में इस चित्र में कहीं हाथी दौड़ रहे हैं तो कहीं उन पर शिकारी सवार है। चित्रित पहाड़ियों पर गजों के झुण्ड व उन पर साधुओं की तपस्या एवं योगासन की मुद्राओं के अद्‌भुत चित्र हैं। एक कक्ष में झालावाड़ के कल्पनाकार झाला जालिम सिंह (प्रथम) की पूरी मंत्री परिषद् तथा उनके प्रपौत्र महाराजा मदनसिंह के चित्र बड़े भव्य तथा प्रभावी हैं। उनकी वेशभूषाओं में शाही झलक परिलक्षित है। इन चित्रों में सुनहरे रंग का प्रयोग अधिक है, जिन पर यूरोपियन प्रभाव भी दिखाई देता है। समीक्षकों के अनुसार इन चित्रों में शाही वेशभूषा तथा भाव भंगिमाओं से झालावाड़ राज्य के निकट राज्य की चित्र शैली के पतन के चिन्ह साफतौर पर दिखाई देते हैं।

भगवान श्रीनाथजी की विभिन्न राजसी भंगिमाओं का चित्रण नाथद्वारा शैली से प्रभावित है। झालावाड़ के शासक भगवान द्वारकाधीश के परमभक्त रहे अत: उन्हें श्रीनाथजी तथा नवनीत प्रियालाल की सेवा करते हुए जिस प्रकार उकेरा गया है, वह आज भी जीवन्त है। इन्हीं के साथ वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टि पूजा से सेवित बिठ्ठलनाथजी तथा अन्य गोस्वामियों के अंकन भी अत्यन्त मनमोहक हैं। कंवरपदा महल के कक्ष के एक सुन्दर कलात्मक मंदिरनुमा आलिये में श्रीनाथजी का पूर्ण शृंगार नयनाभिराम वस्त्रों तथा मालाओं से चित्रित किया गया है। इसमें अनेक रंगों के साथ स्वर्ण रंग का भरपूर प्रयोग है। चित्र के पृष्ठ में चारों ओर गायों का सुन्दर चित्रण हाशिये का प्रभाव बढ़ाता है। एक प्रभावी चित्र में झालरापाटन के

द्वारकाधीश भगवान तथा नवनीत प्रियाजी को पूर्ण श्रृंगार में उकेरा है, जिसमें नवनीत प्रियाजी को मूँछों से चित्रित किया है। इस चित्र के पृष्ठ आधार को स्वर्ण रंगों की मोर पंखियों से सँवारा गया है। कृष्ण लीला के अंकन से उनकी मनोहारी बाल लीला, कालिया दमन, व अन्नकूट भात-भोग आदि के चित्र प्रमुख हैं। इनमें एक अत्यन्त मनभावन चित्र गीत गोविन्द की भूमि के आधार पर रचा गया है। इसमें राधा-कृष्ण तथा राधा की सखी को चित्रित किया गया है। इसमें सखी मानिनी राधा को कृष्ण से मिलाने के लिए मना रही है। यह चित्र राजस्थान की चित्रांकन परम्परा में अत्यन्त मनोहारी तथ जीवन्तता लिए माना जा सकता है। इसी क्रम में एक आलिये में श्रीकृष्ण का राधाशक्ति व सखियों के संग चन्द्रमा की धवल चांदनी रात्रि के मध्य सघन बृजवन में किए प्रसिद्ध महारास का अतिसुन्दर चित्रांकन है, जिसे लगातार निहारते रहने पर भी आँखें नहीं थकतीं। ये चित्रांकन यथार्थ शैली में टेम्परा पद्धति से बनाये गये हैं, जो यह दर्शाते हैं कि राज्यकाल में झालावाड़ राज्य में कृष्ण भक्ति का बड़ा प्रभाव था। चित्र में महारास व धवल चांदनी का चित्रण चित्रकारों ने पूरे मनोयोग से उकेरा है। भारत के प्रख्यात कला समीक्षक नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के व्यक्तिगत चित्र संग्रह में राम दरबार का एक अति सुन्दर चित्र है। यह चित्र झालावाड़ चित्रांकन परम्परा का प्रमुख प्रतिनिधि चित्र माना जा सकता है, जिसमें झालावाड़ कलम की मौलिक विशेषताएँ विद्यमान हैं कि उन्हें देख कर लगता है, जैसे किसी अत्यन्त कुशल चित्रकार ने इसका इतना जीवन्त

अग्नि स्वरूप

गोवर्धनधारी श्री कृष्ण

चित्रण किया है। इसी क्रम में एक अद्भुत प्रतिनिधि चित्र भगवान गणेश का है, जिसमें उन्हें गहरे लाल एवं श्वेत रजत रंग से रेखांकित किया है। इस चित्र में गणेश का मूल शीश काफी वीरत्व भाव का है तथा वे पूर्णत: देववस्त्र व रजत अलंकरणों से सुशोभित हैं। झालावाड़ कलम का ऐसा चित्र राजस्थान और आस-पास के प्रदेशों की कला-परम्परा में अभी तक कहीं देखने में नहीं आया है। चित्र में गणेश के मुख मण्डल का भाव ही उनकी विशिष्टता है जो उन पर बने अन्य भारतीय चित्रों में उन्हें अलग विशिष्टता प्रदान करता है।

इसी प्रकार रामलीला के चित्र भी भित्तियों व आलियों में उकेरे हुए हैं। इसमें से कुछ पर कांगड़ा शैली की कला का प्रभाव है। वनवास के समय चट्टान पर बैठे राम-सीता का अंकन अत्यन्त मोहक है, वहीं राम दरबार के अंकन में ब्रह्मा, शिव को भी दर्शाया गया है। राम की शिव-पूजा का दृश्य इनमें झालावाड़ चित्रांकन की विशेषताओं का प्रतिनिधि अंकन है। इसी प्रकार रावण-वध के अंकन में जो भंगिमा राम तथा लक्ष्मण की दर्शायी गई है, वह बड़ी प्राणवान है। भरत मिलाप का दृश्य अत्यन्त भावपूर्ण है। इसमें राम और भरत दोनों एक दूसरे को बाँहों में लिए जिस तरह से मिल रहे हैं, वह भंगिमा राजस्थान की अन्य शैलियों में इस प्रसंग पर बनाये चित्रों में कहीं नहीं मिलती है। इस अंकन में रंग और रेखायें स्वयं बोलती हैं तथा शब्दों के

शाली होत्र सचित्र ग्रन्थ

लिए तो मानों कोई स्थान ही नहीं बचा है। इसी क्रम में एक दृश्य में दो सुन्दर पक्षियों को डाल पर बैठे हुए दर्शाया गया है। पक्षियों के रंग चटख हैं, जिनके कारण वे सजीव दिखाई देते हैं। एक आलिये के चित्र में सुन्दर गमले में पुष्प-वल्लरी तथा उसमें ऊपर तक फल रखे हैं, जिन पर कुछ पक्षी बैठे हैं। इनमें मोतियों की माला को बतख समान ये पक्षी चोंच में पकड़े हैं। इस अंकन पर ईरानी प्रभाव की छाप समीक्षकों द्वारा व्यक्त की गई है। इन आलियों में छावनी का सुन्दर जलाशय, घाट, पुष्प वीथिका व सघन वृक्ष सहित वन जीवों के नेत्ररंजक चित्र हैं जिनमें कई जंगली पशु आखेट तथा जलाशय में किल्लोल करते पक्षियों को चित्रित किया गया है। संभवत: यह तत्कालीन छावनी के चित्रकारों द्वारा आँखों देखे दृश्य हैं। अन्य दृश्यों में झरोखा दृश्यों पर पहाड़ी चित्र शैली का प्रभाव है। अन्य चित्रों में दो सुन्दर चित्र तन्वंगी नृत्यांगनाओं के हैं, जिनकी निर्माण शैली अन्य शैलियों से पूर्णत: भिन्न है। ये नृतकियाँ न तो मेवाड़ शैली की स्त्रियों की तरह है, ना ही बून्दी शैली की नारियों की तरह ठिगनी है और ना ही जयपुर शैली की स्त्री की तरह लम्बी ये सुगठित देह वाली तन्वंगी नारियाँ हैं। इनके वस्त्र अत्यन्त आकर्षक हैं, जो पंक्तिबद्ध हैं। चित्रकार ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक सधे हुए अनुपात से इनका चित्रण किया है, भित्तियों पर ये नर्तकियाँ वाद्य बजाते हुए चित्रित हैं।

भित्तियों व कक्षों की छतों पर सुन्दर बेलबूटे व झालावाड़ नगर की तत्कालीन प्राकृतिक दृश्यावली भी पूरे कौशल के साथ प्राणवान तरीके से ऊकेरी गई है। इनमें अंगूर की बेल का अंकन बेजोड़ है। इन दृश्यों पर मुगल प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो मुगल शैली में ईरानी प्रभाव से आया। ये चित्र बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों में बनाये गये प्रतीत होते हैं।

उक्त चित्रकारों ने अपने समय में पृथ्वी विलास, श्रीनाथजी की हवेली और झालारापाटन की प्रसिद्ध विनोद भवन की हवेली में भी अनेक चित्र बनाये, जिनमें राजा रजवाड़ा शैली, देवी, देवता अवतार एवं राम तथा कृष्ण लीला प्रमुख हैं। झालावाड़ जिले में गागरोन दुर्ग के सूरजपोल द्वार की पूरी छत पर कोटा महाराव रामसिंह तथा उनकी सेना की विशाल चित्रकला कोटा शैली का सुन्दर चित्र है। झालरापाटन के शानितनाथ मन्दिर, सारथल वालों की छतरी तथा यहाँ कई पुरानी इमारतों में आज भी चित्रांकन की तत्कालीन परम्परा के दर्शन होते हैं। कला समीक्षकों का मानना है कि 'ये चित्र इंग्लैण्ड के लेण्डर स्केल पेन्टर, कान्सलेबल टर्नर की तेलविधि से बने हैं, जिनमें यूरोपियन प्रभाव प्रमुखता से है। इनमें वाश चित्रों का अपना महत्व है। ये चित्र 1902 ई. से लगभग 1945 ई. तक की अवधि के भी पश्चात् तक बने प्रतीत होते हैं। इनमें एक आवक्ष चित्र यहाँ के शासक राजेन्द्र सिंह सुधाकर का है, जिनका समय 1929 से 1943 ई. तक रहा। इन चित्रों से यथार्थ स्पष्ट है तथा ये चित्र कम्पनी कला धरोहर से प्रभावित माने जाते हैं। इन चित्रों का रंग अत्यन्त चमकदार रूप में प्रयोग किया गया है। यहाँ इनकी कई तानें बनायी गई हैं, लेकिन इनमें भारतीय बीज का भी मिश्रण है। इनमें प्रमुख रूप से नीले, गुलाबी, हल्के हरे, पीले, लाल, कत्थई रंगों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इनमें मिश्रित रंगों को भी प्रयुक्त किया गया है। झालावाड़ के पुरातत्व संग्रहालय में सुनहरे देव चित्रों की हस्तलिखित श्रीमद्भागवत 11 सचित्र जिल्दों में, ताड़पत्र पर लिखी अवतार चरित्र सचित्र 5 जिल्दों में, भागवत चतुर्थ सचित्र 3 जिल्दों में, सहित शालिहौत्र सचित्र ग्रन्थ 6 जिल्दों में, गीत गोविन्द, मधुमालती, भागवत मूल, अरबी शाहनामा, सचित्र लिखे हैं, जिन पर स्वर्ण एवं रजत धातु से चित्रों का अंकन किया है।

उक्त सभी चित्रों एवं सचित्र ग्रन्थों पर अभी तक किसी प्रकार का प्रकाशन तथा शोध नहीं हुआ है। यहाँ पुरुषोत्तम माहात्म्य तथा बारहमासा के सचित्र ग्रन्थ भी देखने योग्य हैं। इनमें देव चित्रों, अवतारों के चित्र स्वर्ण सहित लाल, पीले, नीले रंगों से बने हुए हैं, जो समीक्षा एवं शोध की दृष्टि से चित्रांकन परम्परा में अभी तक अज्ञात व अछूते हैं। लेखक के सामुख्य अध्ययन के आधार पर झालावाड़ के पुरातत्व संग्रहालय के चित्र कक्ष में विभिन्न देव अवतारों व ऋतु संबंधी 60 हस्त निर्मित चित्र प्रदर्शित हैं। पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत कंवरपदा महल के कक्षों में देशी रजवाड़ों, देव अवतारों एवं प्राकृतिक स्वरूपों के 133 भित्ति चित्र बने हुए प्रदर्शित हैं। इनके अतिरिक्त 300 हस्तनिर्मित चित्र संग्रहालय के संग्रह में सुरक्षित हैं।

इस प्रकार शौर्य, उत्साह, पौरुष की अनुपम अभिव्यक्ति के साथ-साथ इन चित्रों में भावपूर्ण भक्ति, देवों की दिव्य लीला, रास, शालीनता ओर गौरव के मध्ययुगीन आदर्शों का ऐसा संतुलित मिश्रण है, जिनमें एक युग की सुन्दर झलक मिलती है और यह झलक झालावाड़ की चित्रांकन परम्परा की वह कलात्मक जीवन्तता है, जिसका मोहक स्वरूप आज भी देशी-विदेशी पर्यटकों और कला समीक्षकों को यहाँ खींच ले आता है।

'अनहद' जैकी स्टूडियो, 15-मंगलपुरा, झालावाड़-326001 (राज.)

■

आलेख

गोंड जनजाति की चित्रांकन-परम्परा

लक्ष्मीनारायण पयोधि

गोंड जनजाति समूह प्रारम्भ से ही कलाप्रिय रहा है। पाषाणयुग में गुफ़ाओं की भित्तियों पर प्रकृति में देखी गयी आकृतियों को उकेरने की प्रक्रिया से इस जनजाति की यह कलायात्रा आरम्भ हुई। अत: हम कह सकते हैं कि जनगढ़ श्याम के नवाचार के जरिये वर्तमान में जो गोंड चित्रकला विख्यात हुई है, वह इस जनजाति के लोगों को अनायास ही प्राप्त नहीं हुई है। यह एक लंबी यात्रा है, जो हज़ारों-लाखों वर्षों पूर्व से इनके पूर्वजों से होकर इन तक पहुँची है।

गोंड जनजाति प्रमुख रूप से मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यों में निवास करती है। किसी समय एक बड़े भूभाग पर गोंडवाना साम्राज्य स्थापित था। उस अवधि में गोंड जनजाति की पारंपरिक कलाओं को काफी प्रोत्साहन मिला था। यही कारण है कि इस जनजाति को विरासत में चित्रकला के साथ-साथ नृत्य-संगीत, नाट्य, गाथा-गायन आदि विभिन्न ललित कलाएँ प्राप्त हुई हैं। इस जनजाति समूह में सम्मिलित परधान जनजाति के लोग पारंपरिक रूप से अपने यजमान गोंडों के लिये चित्रांकन, गायन-वादन आदि कलाओं को प्रस्तुत करते रहे हैं। डिण्डोरी जिले के पाटनगढ़ ग्राम के अधिकांश परधान लोगों की चित्रकारी में संलग्नता इस तथ्य की पुष्टि करती है। इसी प्रकार परधान बाना वाद्य के साथ यजमान गोंडों के विभिन्न उत्सवों में गाथा-गायन प्रस्तुत कर उनका मनोरंजन करते रहे हैं। यह परम्परा आज भी कमोबेश चलन में है।

आनंद कुमार श्याम

परधान चित्रकार ललित कलाओं के शास्त्रीय पक्ष से परिचित नहीं है। चित्र बनाने का उन्होंने कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है। मस्तिष्क के जरिये आँखों में जो भी दृश्य बना उसने दीवारों पर आकार ग्रहण कर लिया। इन दृश्यों में उनके द्वारा देखे गये वृक्ष, नदी, पहाड़, पशु-पक्षी, खेत-खलिहान, आखेट, सूरज, चाँद, नक्षत्र और पारंपरिक मान्यता के आधार पर मस्तिष्क में अंकित देवी-देवताओं के काल्पनिक चित्र आदि प्रमुख हैं।

जनजातीय कलाएँ एकान्त में नहीं, बल्कि सामूहिक रूप से विकसित होती हैं। गोंडी चित्रकला के विकास की भी यही पद्धति रही है। गोंड जनजाति के लोग लिपीपुती दीवारों से लेकर आँगन तक अल्पनाओं और चित्रों से घर को सजाते-सँवारते रहे हैं। अनाज की कोठियों और अन्य भौतिक वस्तुओं को भी चित्रांकन के माध्यम से दर्शनीय बनाना उनकी जीवनशैली में शामिल रहा है। पूजा-अनुष्ठानों, पर्व-त्योहारों, उत्सवों, संस्कारों आदि अवसरों पर भी प्रसंगानुसार इस जनजाति के लोग चित्रांकन को महत्व देते हैं। पूर्व में विशेष अवसरों पर किसी परिवार के आमंत्रण पर उसके घर की दीवारों का अलंकरण समुदाय के सारे लोग मिलकर करते थे। इस कार्य में महिलाएँ अधिक सक्रिय हुआ करती थीं। इसलिए उनमें यह दक्षता अधिक विकसित हुई। कालान्तर में पुरुषों में भी चित्रांकन की अभिरुचि जागृत हुई और वे भी इस कला का अभ्यास करने लगे।

कलाएँ आत्मा की अभिव्यक्ति होती हैं। कलाकार आत्मा की विभिन्न भाव-मुद्राओं को मन की आँखों से पढ़ता और कल्पना की कूची से गढ़ता है, उन्हें आकार और आकर्षण देता है। वह उनकी भाषा का भी सर्जक होता है। सभ्यता के प्रारंभिक वर्षों में मनुष्य विचारों के आदान-प्रदान के लिए रूपात्मक अर्थात् चित्रात्मक भाषा का ही प्रयोग करता था। भीम बेठका सहित विभिन्न गुफ़ाओं के शैलचित्र इस तथ्य के ठोस प्रमाण हैं। शैल-चित्रों से न केवल प्राचीनतम अर्थात् आरंभिक मनुष्य के स्वभाव, जीवन-संघर्ष और तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान होता है, बल्कि उसका कला-बोध, तर्कशक्ति, सृजनशीलता और चेतना के विभिन्न स्तरों तथा आयामों का भी पता चलता है। पुरातत्वविदों ने पाषाण युगीन मानव की शैलचित्र कला को 10 से 30 हजार वर्ष प्राचीन माना है। इस कला की परंपरा को आज हम जनजाति समूहों की भित्ति-चित्रांकन कला में लक्ष्य कर सकते हैं।

गोंड जनजाति समूह में कलाओं की प्राणवंत उपस्थिति देखी जा सकती है। कलाएँ इस जनजाति समूह के लिए परंपरा का निर्वाह मात्र नहीं। कलाएँ जनजातीय जीवन का अभिन्न अंग हैं। इस जनजाति की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा में कला के दोनों रूप विद्यमान हैं- ललित कला भी और कर्मकला अथवा उपयोगी कला भी। चित्रकला, गीत, संगीत, नृत्य, नाट्य आदि भाव प्रधान ललित कलाएँ और मिट्टी, धातु, पाषाण, काष्ठ, रस्सी, पत्ते, बाँस एवं अन्यान्य प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं से निर्मित उपयोगी शिल्प-कलाओं का अभ्यास जनजातियों में स्वभावगत रूप से होता रहता है।

इस जनजाति समूह में जिस प्रकार शरीर के अंगों पर गुदवाये जाने वाले गुदना अथवा गोदना-चित्रों का सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व है, वैसी मान्यताएँ भित्तियों पर

चित्रांकन की भी हैं। घर की भीत अर्थात् दीवार को लीपने अथवा पोतने के बाद उस पर अवसर और प्रसंग के अनुरूप वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, सूर्य-चन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं के चित्र उकेरे जाते हैं। ये अवसर अथवा प्रसंग जन्म-विवाह या पर्व-अनुष्ठान से संबंधित हो सकते हैं। इन चित्रों में जनजातीय कलाकारों की कल्पना, परम्परा की समझ, सौन्दर्य-बोध और हस्त-कौशल का सम्मिलित प्रभाव देखा जा सकता है। छत्तीसगढ़ के बस्तर, तेलंगाना के आदिलाबाद, करीमनगर, खम्मम, आन्ध्र के विशाखा, महाराष्ट्र के चन्द्रपुर, गढ़चिरोली, उड़ीसा के कोरापुट, कालाहाँडी आदि क्षेत्रों के गोंड जनजाति समूहों की चित्रांकन शैलियों के चाक्षुष बिम्बों को उनकी विषयवस्तु की विशेषताओं के साथ रेखांकित किया जा सकता है। भौगोलिक सीमाओं और सांस्कृतिक भिन्नताओं के साथ अलग-अलग क्षेत्रों की गोंड चित्रकला में अंतर देखा जा सकता है।

कल्पना वास्तव में कलाकार की मानसिक सृजनशक्ति है। प्रकृति और मन के पारस्परिक संबंध से कल्पना का जन्म होता है। वैसे भी कल्पना शब्द का अर्थ ही 'सृष्टि करना' है। चित्रांकन-कला जनजातियों की कल्पनाशीलता का सबसे सुंदर दृश्यमान उदाहरण है।

गोंड जनजाति समूह के लोग मकान बनाते समय मिट्टी की दीवारों के किनारे की सतहें ऊँची उठा देते हैं। सूखने के बाद उन किनारों को गेरू, कजली या नील से रंग दिया जाता है। भित्तियों अर्थात् दीवारों पर त्रिभुजाकार या वृत्ताकार रेखाएँ उत्कीर्ण कर उन्हें भिन्न-भिन्न रंगों से सजाना इस जनजाति समूह की प्राचीन परम्परा है। ताकों, खूँटियों और अनाज की कोठियों को भी ये चित्रांकित करते हैं। चौखट के तीन ओर चित्रों में ये दो अथवा तीन रंगों का प्रयोग करते हैं। दीवारों पर पारंपरिक कथा-प्रसंगों को गोंड बहुत आस्था के साथ उकेरते हैं। जैसे कि पहले भी कहा है इस समूह की परधान जनजाति चित्रांकन कला में सिद्धहस्त होती है। इस जनजाति के लोग चित्रांकन को 'चीन्हा' कहते हैं।

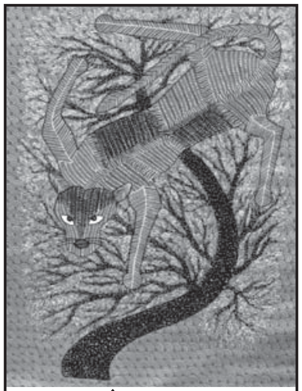
आनंद कुमार श्याम

इधर गोंड जनजाति समूह के जो कलाकार चित्रांकन की विधा से जुड़कर उसे प्रतिष्ठित करने के लिये प्रयासरत हैं, पारंपरिक चित्रकला में उनके नवाचार के कारण ही कलाप्रेमियों का ध्यान इस शैली के चित्रों की ओर आकृष्ट हुआ है। ये चित्रकार कलम के माध्यम से काले रंग का उपयोग करते हुए आकृतियों में बारीक रेखाओं, बिन्दुओं, वृत्तों, अर्द्धवृत्तों आदि का उपयोग करते हुए चित्र को अत्यंत वास्तविक रूप से दर्शनीय बनाते हैं, उदाहरण के लिये सुभाष व्याम के चित्र मोर-मोरनी का उल्लेख किया जा सकता है। इस चित्र में एक मोर उत्सुकता के साथ मोरनी की पीठ पर बैठे हुए मोरशिशु को निहार रहा है। उसकी पीठ पर भी एक शिशु बैठा हुआ है, मोरनी का सिर धरती की ओर झुका हुआ है। चित्र को देखने पर यह पूरा मयूर परिवार अत्यंत आत्मीय भाव से संतोष की मुद्रा में दिखाई देता है। इस चित्र में सुभाष व्याम ने काले रंग की बारीक रेखाओं का अत्यंत चित्ताकर्षक प्रयोग किया है। यह प्रयोग इस शैली के पुरोधा चित्रकार स्व. जनगढ़ सिंह श्याम ने आरम्भ किया था। इस शैली के अन्य परधान चित्रकारों में दुर्गाबाई व्याम, हजरिया श्याम, ननकुसिया बाई श्याम, आनन्द सिंह श्याम, व्यंकटरमन सिंह श्याम, पद्मश्री पुरस्कार से अलंकृत भज्जू सिंह श्याम, नर्मदा सिंह टेकाम आदि उल्लेखनीय हैं। नयी पीढ़ी के चित्रकार भी इस शैली का खूब प्रयोग और अभ्यास कर रहे हैं। इनके सारे चित्र पारंपरिक कथाओं पर आधारित हैं, जिनके प्रमुख पात्र देवी-देवता, पशु-पक्षी, प्रकृति और वन्य जीवन हैं।

पूर्व में चित्रांकन के लिए इस जनजाति के कलाकारों द्वारा चूना अथवा खडिया, पीली मिट्टी, कोयला, गेरू एवं वनस्पतियों द्वारा तैयार अन्य प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता रहा है। ये रंग गोबर अथवा लाल मिट्टी से पुती दीवारों अथवा आँगन में खिल उठते हैं। समय के साथ-साथ रंगों के प्रति इस जनजाति के कलाकारों की समझ बढ़ी और बाज़ार में उपलब्ध अन्य तैयार रंगों का इस्तेमाल वे करने लगे। इसी प्रकार चित्राकृतियों में भी आड़ी और खड़ी रेखाओं तथा बिन्दुओं के उपयोग की समझ में भी परिवर्तन देखा जा सकता है। इनके चित्रों पर अब आधुनिक चित्रकला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। अब ये कलाकार कागज, पेंसिल, रबर, ब्रश और रंगों का सलीके से उपयोग करना सीख गये हैं। आधुनिक कलाबोध और टूल्स का इस्तेमाल करते हुए नयी पीढ़ी के गोंड कलाकारों द्वारा पारंपरिक चित्रकला में निरंतर प्रयोग किये जो रहे हैं, जिस वजह से इनकी चित्रकला को विश्वमंच पर पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो रही है। विभिन्न कथानकों और पारंपरिक मिथ कथाओं पर आधारित होने के बावजूद गोंड चित्रकला अपनी पारंपरिक शैली और एक किस्म की अनगढ़ता के बावजूद अपनी मौलिकता के कारण कला-पारखियों को आकर्षित करने में सफल रही है।

गोंड जनजाति समूह के कलाकार स्मृति के आधार पर कथा-प्रसंगों को कल्पना से संकुचित अथवा विस्तारित करते हैं। इसे ही 'लघिमा' और 'महिमा' का सिद्धांत कहा गया है ये कल्पना की दो प्रमुख शक्तियाँ हैं। वर्ण-बोध, रूप-परिज्ञान और मूर्त्त-विधान 'स्मृति' पर निर्भर हैं। इसलिए दृष्टि-कल्पना का निकटतम संबंध स्मृति से माना गया है। गोंड जनजाति समूह के भित्तिचित्र इस सिद्धांत को परिपुष्ट करते हैं। इन चित्रों को अतीत की संवेदनात्मक अनुभूति की स्मृति के सुरक्षित अंशों के रूप में देखा जा सकता है।

गोंड जनजाति की चित्रांकन परम्परा के ये सारे बिम्ब-विधान कला के क्रिया-पक्ष माने जा सकते हैं, जो कल्पना से ही उत्पन्न होते हैं। निष्कर्षत: भित्तियों पर अंकित ये बिम्ब कल्पना और प्रतीक के मध्यस्थ हैं, जो जीवन के प्रति गोंड जनजाति के दृष्टिकोण और उसकी अखण्ड आस्था को प्रतिबिम्बित करते हैं।

- एफ-83/54, तुलसी नगर, भोपाल-462003, मो. 9424417387

■

आलेख

तानसेन : मिथक और यथार्थ

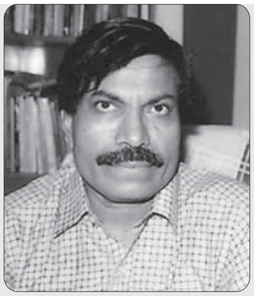

राम मेश्राम

तानसेन (ई. 1493-1589) और उनक संगीत पिछले 430 वर्षों के सुदीर्घ अंतराल के बाद आज भी समकालीन संगीत जगत में विलक्षण जन आस्था का विषय है। तानसेन के दो जन्म वर्ष प्राप्त होते हैं। दूसरे मत के अनुसार, उनका जन्म 1506ई. में हुआ, जबकि मृत्यु वर्ष 1589 ई., निर्विवाद है। अबुल फ़ज़्ल ने 'अकबरनामा' में तानसेन के निधन का वर्ष- 1589 ई. बताया है। अबुल फ़ज़्ल की मृत्यु, तानसेन की मृत्यु के बाद 22 अगस्त 1602 ई. को हुई, और तब तक 'आईने अकबरी' और 'अकबरनामा' का लेखन-संपादन लगातार जारी रहा। अत: मृत्यु के वक्त तानसेन की उम्र चाहे 83 वर्ष हो, या 96वर्ष, तानसेन बिलाशक दीर्घायु थे।

इतिहास में अब तक 4 तानसेन हो चुके हैं। अकबरी दरबार के तानसेन के अतिरिक्त जहांगीर (1605-1627 ई.) के दरबार में भी एक तानसेन कलावन्त मौजूद थे, जिनकी तारीफ जहांगीर के सामने एक सरदार द्वारा किये जाने का जिक्र है। तीसरे तानसेन, मुहम्मद शाह रंगीले (1709-1748ई.) के शासनकाल में थे, जिनके ध्रुवपदों में उनका नाम ''मियाँ तानसेनि'' मिलता है। 'रागमाला' के 216ध्रुवपद, जो अकबरी दरबार के महान गायक तानसेन के नाम से प्रचलित हैं, तानसेन के नहीं हैं, बल्कि इन सरस-सुजान, ''मियाँ तानसेनि'' के हैं। इन ''मियाँ तानसेनि'' का मूल नाम ''सरस कवि'' था, जो संभवत: 'आगरा घराने' के गायक 'सरस रंग' थे। राग 'मेघ'-'झपताल' में निबद्ध ध्रुवपद ''प्रबल दल साजै, झुक-झूम या भूम पर, उमड़ घनघोर कर इन्द्र लै आयौ रे'' इन्हीं ''मियाँ तानसेनि'' का है, जिसके अंत में इनका नाम 'मियाँ तानसेनि' साफ दृष्ट्व्य है। मूल ध्रुवपद, निम्नानुसार हैं :-

राग मेघ-झपताल

''प्रबल दल साजे, झुक झूम या भूम पर,
उमड़ घनघोर कर इन्द्र लै आयौ रे।
बरसत मूसलधार, होत पहर चार,
कृष्ण गिरि धर गोकुल बचायौ रे।
बूंदन तैं धरनीधर सबन की रक्षा कर,
पसु पंछी जीव जन्तु अतिसुख पायौ रे।
कहै 'मींयाँ तानसेनि' तेरी गति अकथ,
सुरपति अधीन होय सीस नवायौ रे।।''

वर्तमानकाल में भी एक तानसेन हो गये हैं, जो डागर वाणी के प्रमुख ध्रुवपदकारों में एक तानसेन पाण्डेय थे, जिनका स्वर्गवास पिछले वर्षों में हुआ।

तानसेन समारोह से विश्व संगीत समारोह

तानसेन के प्रति इतनी व्यापक जन आस्था का कारण पिछले लगभग 94 वर्षों से तानसेन की यादगार में ग्वालियर में होने वाले संगीत समारोह का लगातार आयोजन है। सबसे पहले सन् 1924 में तत्कालीन ग्वालियर राज्य द्वारा यह समारोह राजकीय स्तर पर बड़े पैमाने पर मनाये जाने की शुरुआत हुई, लेकिन बुजुर्ग कलाकारों की याददाश्त में अभी यह बात है कि, इससे भी पहले कई वर्षों से संगीत के गायक-वादक-कलाकार और संगीतजीवी गणिकायें हर वर्ष दिसम्बर में ग्वालियर के हजीरा इलाके में इसी जगह तानसेन को संगीतांजलि अर्पित करने बराबर आया करते थे।

तब से लेकर सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, पहले केन्द्रीय शासन के तत्कालीन सूचना-प्रसारण मंत्री डॉ. बी. व्ही. केसकर, और आकाशवाणी के हिन्दुस्तानी संगीत के सलाहकर, विख्यात संगीताचार्य ठाकुर जयदेव सिंह के स्मरणीय प्रयासों और सक्रिय रुचि के कारण पहले केन्द्रीय शासन और उसके बाद मध्यप्रदेश शासन द्वारा यह समारोह आयोजित किया जाता रहा है और पिछले चंद वर्षों से इस समारोह की अत्यंत नयनाभिराम प्रस्तुति होने लगी है और अब यह ''विश्व संगीत समारोह'' के रूप में मनाया जाता है, जिसमें हर साल दुनिया के अलग-अलग देशों के संगीतज्ञ आकर, अपने-अपने देश की संगीत-कला प्रस्तुतियों से तानसेन को संगीतांजलि पेश करते हैं। भारत में होने वाले सभी प्रकार के संगीत

समारोहों की तुलना मे तानसेन समारोह की ''वैश्विक संगीत'' की अलग ही छवि बनती जा रही है। सन्-1924 में जब ग्वालियर रियासत द्वारा पहली बार तानसेन समारोह आयोजित किया गया, उस वक्त, या स्वतंत्रता के बाद के वर्षों तक भी, शायद ही, कभी किसी के मानस में यह कल्पना आई हो कि, कभी तानसेन समारोह, एक विश्वस्तरीय संगीत समारोह के रूप में भी आयोजित होगा। इसे विश्व स्तरीय रूप देने का एकमेव श्रेय उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी के कल्पनाशील उपसंचालक राहुल रस्तोगी और उनकी टीम के समर्पित सहयोगियों को है।

तानसेन के ऐतिहासिक व्यक्तित्व और काल की सीमाओं से परे जाने वाले उनके संगीत के बारे में ऐतिहासिक प्रामाणिक जानकारी की अभी भी बहुत कमी है, और जनश्रुतियों का इतना अधिक कुहासा व्याप्त है, कि किसी निश्चित तथ्य तक पहुँच पाना आसान नहीं है। इसलिये यहाँ इस सर्वकालिक तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता, कि ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में जनश्रुतियाँ ही ऐतिहासिक भूमिका अदा करती हैं, कि जब तक पुष्टिकारक प्रमाण, प्राप्त नहीं हो जाते।

तानसेन की तान से टेढ़ी शिव मढ़िया

ग्वालियर से लगभग 46.2 किलोमीटर पूर्व की तरफ, भिण्ड जिले की सीमा पर स्थित ''बेहट'' नाम का कस्बा तानसेन का जन्म स्थान है। बेहट में तानसेन का जन्म स्थल या उनका पैतृक आवास कहाँ है, यह जानकारी नहीं मिलती। बेहट से लगभग 1 किलोमीटर दूर स्थित जंगल में ''झिलमिल'' नामक नदी के किनारे घने पेड़ों के साये तले, एक खुली जगह पर वह चबूतरा है, जिसके बारे में जनश्रुति है कि तानसेन बचपन में इस जगह बैठकर संगीत अभ्यास किया करते थे। पास ही एक मंदिर परिसर है, जिसमें एक मध्यकालीन बावड़ी और अन्य मंदिरों के अतिरिक्त, वह छोटा शिवमंदिर-'मढ़िया' है, जो टेढ़ी है और लगभग 60 डिग्री कोण पर पश्चिम की ओर झुकी हुई है।

जनश्रुति के अनुसार तानसेन की 'तान' की अकल्पनीय ध्वनि-शक्ति से यह मढ़िया टेढ़ी होकर झुक गई, लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से यह बात जँचती नहीं। स्वर्गीय डॉ. हरिहर निवास- द्विवेदी का इस

विषय में मत अधिक सुसंगत है कि, 15-16वीं ई. में घरों के निर्माण कार्य में चूने का बहुतायत में इस्तेमाल हुआ करता था। मंदिर के निर्माण के समय नींव में लगा चूना कमजोर रह गया होगा और बारिश का पानी नींव में जाने और आस-पास की जमीन के कमजोर होने से मंदिर की नींव धसक गयी और मंदिर टेढ़ा होकर, इसी टेढ़ेपन में यथावत् स्थिर हो गया। कस्बा बेहट, मध्यकाल में गोहद (भिण्ड) रियासत के राणा राजाओं की ग्रीष्मकालीन राजधानी हुआ करता था और यहाँ रियासती दौर में निर्मित एक ऐतिहासिक गढ़ी आज भी है, जिसका संरक्षण, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा किया जाता है।

तानसेन कलावन्त

तानसेन के ब्राह्मण जाति में पैदा होने की बात किसी भी ऐतिहासिक स्रोत से प्रमाणित नहीं है। तानसेन, ''कलावन्त'' जाति के कलाकार थे। ''कलावन्त'' एक संगीतजीवी जाति हुआ करती थी। अबुल फ़ज़ल ने आईने-अकबरी में स्पष्ट लिखा है कि कलावन्त जाति के कलाकारों का काम प्रधानतया: ध्रुवपद गाना था। जहाँगीर (1605-1627 ई.) ने अपनी आत्मकथा 'तुज्के जहाँगीरी' में लिखा है कि, ''तानसेन कलावन्त'' हमारे पिता की सेवा में था, जो अद्वितीय था। नायक बख्शू के पदों के संकलनकर्ता अजम खाँ के अनुसार तानसेन, अकबर के समय संगीत-कला के शिखर पर पहुँचा हुआ 'कलावन्त' था। अबुल फ़ज़ल ने ''ढारी, कव्वाल, हुरकिया, दफजन, नटवा, और कलावन्त'' नामक संगीतजीवी जातियों का वर्णन किया है। कुछ और ऐतिहासिक स्रोतों में भी तानसेन का उल्लेख ''तानसेन कलावन्त'' नाम से होता है।

तानसेन की संगीत शिक्षा

डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी ने एक ध्रुवपद के विश्लेषण के आधार पर मकरन्द और कमला को उनके माता-पिता माना है। इस ध्रुवपद में ''गोपाचल'' ग्वालियर की बहुत तारीफ तानसेन ने की है कि 'मुझे राग-रागिनी का ज्ञान मकरन्द की कृपा से हुआ :-

''गढ़ गोपाचल रे
जाकी है कमलासन नारि कमला जाकी लाली
लीयें प्रथम औतार कीनों हो।
तुम त्रईफन धर चारि वरन
इनि के अतन-जतन गुन तीन रहो
अस्तकर जल पुसकर जल ताके चारौं कंगूरा
तीषे नीके लागत नों (हो)
दलमल करत (करन) गुर मकरन्द पद
राग रागिनी रति (राति) सुवासन
तानसेन को दीनों (हो)''

शायद यह मकरन्द और कमला तानसेन के माता-पिता हों? क्योंकि ध्रुवपद में मकरन्द या कमला को तानसेन ने ''माता-पिता'' नहीं लिखा है, हालांकि कमला और मकरन्द का स्मरण तानसेन ने अत्यन्त श्रद्धा से किया है।

जैसा कि तानसेन, 'कलावन्त' नामक एक संगीतजीवी जाति में पैदा हुए थे। अत: तानसेन ने उपरोक्त ध्रुवपद में मकरन्द से संभवत: शुरुआती दौर की संगीत शिक्षा प्राप्त करने की बात कही है। उसके बाद संगीत शिक्षा के दूसरे दौर में तानसेन राजा मानसिंह तोमर (सन् 1486-1516ई.) के दरबार के सानिध्य में आते हैं। राजा मानसिंह के पूर्व वाले दौर में 'गोपाचल प्रदेश' के आसपास 'ध्रुवा' शैली के गायन का प्रचलन था। यह 'ध्रुवा' गायन, भरत के नाट्य शास्त्र से भी पहले से प्रचलित था और नाट्य शास्त्र के अध्याय 32/1 में 'ध्रुवा' गीतों के गायन का विस्तार पूर्वक वर्णन है। कतिपय विद्वानों के अनुसार ध्रुवपद गायकी के पहले 7वीं से 11वीं शताब्दी के आसपास ' 'गोपाचल प्रदेश में प्रबंध गायकी का प्रचलन था। 'ध्रुवा' गायन से प्रबंध गायन के यह गान-प्रकार उत्तरोत्तर विकसित होते गये और सहज-बोधगम्य लोकभाषा शैली के ध्रुवपद में विकसित होते गये। इस प्रकार ध्रुवपद जैसी नवीन गायकी शैली की प्रतिष्ठा, पहले से चले आ रहे मार्गी संगीत के स्थान पर हुई।

शास्त्रीय ध्रुवपदों को लोकभाषा-बृजभाषा में रूपान्तरित करने वाला यह दौर है, जिसमें मानसिंह के दरबार में ध्रुवपदों को बृजभाषा ढालने का नेतृत्व नायक बैजू ने किया, जबकि मानसिंह की राजसभा में नायक पाण्डवी, नायक कर्ण, महमूद लोहंग और नायक बख्शू जैसे दिग्गज संगीताचार्य पहले से ही मौजूद थे। नायक बैजू, (1450-1537 ई.) बृजभाषा के ध्रवपदों के आदि कवि थे तानसेन की इस दौर की संगीत शिक्षा नायक बैजू के मार्गदर्शन में हुई और उसके बाद ध्रुवपद संगीत का मार्गदर्शन उन्हें नायक बख्शू से मिला। नायक बख्शू के माध्यम से बृजभाषा के ध्रुवपदों का बहुमुखी प्रयोग और प्रचार लगातार हुआ, जिसके कारण अनेक व्यक्ति इस नवीन ध्रुवपद गायकी शैली में दीक्षित हुए। इस दृष्टि से तानसेन बैजू के शिष्यों और बख्शू के प्रशिष्यों में थे। जैसा कि तानसेन अपने एक ध्रुवपद में नायक बैजू का अत्यंत श्रद्धामय उल्लेख करते हैं कि बैजू के संगीत ने पत्थर भी पिघला दिया और इसी प्रकार अपने पूर्ववर्ती दिग्गज संगीतकर गोपाल नायक का श्रद्धा पूर्वक स्मरण करते हैं :-

नाद समुद्र को पार न पायो, सुनियत गुनी कहायो
प्रबंध-छंद, धारू-ध्रुरपद, मार्गी-देशी द्वै विधि गायौ
ब्रह्मा वेद उचरायौ, सारंग बौरायौ,
भरत मत-कल्लिनाथ-हनुमत मत, सप्ताध्याय गायौ।
अनेक सृष्टि रचि पचि गए,
ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र महामुनि प्रसन्न भये,
सारंग बौरायौ
सप्त प्रगट, सप्त गुपुत, नायक गोपाल ध्यायौ, तानसेन,
ताको बैजू पाषाण पिघलायौ।

राजा मानसिंह के बृजभाषा के ध्रुवपदों के नवाचार के बारे, विस्तार से जानकारी ''संगीत ग्रंथ ''राग-दर्पण'' से मिलती है। इसका लेखक औरंगजेब के शासन काल में कश्मीर का सूबेदार फकीरउल्लाह (1665-1671 ई.)'' था, जिसने राजा मानसिंह के मूल संगीत ग्रंथ 'मानकूतुहल' का फारसी अनुवाद 'राग-दर्पण' नाम से किया था, फकीरुल्ला लिखता है कि ''राजा मानसिंह के (ध्रुवपद गायन के) इस अद्भुत आविष्कार के लिये गायन शास्त्र उनका सदा आभारी रहेगा। आज लगभग 200 वर्ष हो चुके हैं, कदाचित आगे चलकर कोई गायक राजा मानसिंह के समान शास्त्र में प्रवीण हो, तो हो, और ध्रुवपद जैसे अन्य गीत की रचना कर सके। परन्तु अभी तो यही विचार आता है कि ऐसा होना असंभव है।'' राजा मानसिंह का यह अद्वितीय संगीत ग्रंथ ''मानकूतुहल'' इतिहास के अँधेरे में विलीन हो गया होता, अगरचे फकीरउल्लाह इस ग्रंथ का 'राग-दर्पण' नाम से फारसी अनुवाद न करता।

तानसेन के तीसरे संगीत गुरु मुहम्मद आदिल शाह सूर ''अदली'' (1549-1556ई.) थे जो खुसरो की ईरानी मकाम पद्धति के मर्मज्ञ पंडित थे। आदिल शाह सूर ''अदली'' शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह के बाद गद्दी पर बैठे। तानसेन और बाजबहादुर के अतिरिक्त बाबा रामदास जैसे बड़े संगीतकारों ने भी अदली से, खुसरो की मकाम पद्धति के संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी।

स्वामी हरिदास-तानसेन के गुरु ?

'निजमत सिद्धांत' ग्रंथ के अनुसार वृन्दावनवासी अनन्य कृष्ण भक्ति रसिक, स्वामी हरिदास जी का जन्म 1527 ई. और स्वर्गवास 1570 ई. से 1592 ई. के बीच किसी समय का है। वे कृष्ण भक्ति और श्याम-श्याम लीला के ध्रुवपदों के रसलीन गायक थे। उनका समाधि स्थल वृन्दावन में 'निधिवन' है। हरिदास जी के ये संगीतमय ध्रुवपद 'केलिमाल' शीर्षक संग्रह में हैं। इन ध्रुवपदों को शास्त्रीय संगीत के 11 रागों, क्रमश: 'नट, गौरी, कानड़ा, केदार, कल्याण, सारंग, विभास, बिलावल, मल्हार, गौड़ और वसन्त में

निबद्ध किया गया है।'

'निजमत सिद्धांत' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार तानसेन, स्वामी हरिदास जी के शिष्य थे, और उन्होंने हरिदास जी से संगीत शिक्षा प्राप्ति की थी। और निधिवन के अहाते में, जहाँ हरिदास जी की समाधि है, वहीं पास में तानसेन की समाधि भी है।

दूसरा प्रमाण उत्तर मध्य काली मारवाड़ चित्रकला शैली की उपशैली किशनगढ़ कलम के अंतर्गत सन् 1760 ई. में बनाया गया वह तैल चित्र है, जो इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है, और जिसमें वृन्दावन में तानसेन के समक्ष बैठे स्वामी हरिदास भक्ति पदों का गायन कर रहे हैं, और तानसेन ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं। तानसेन के पीछे कुछ फासले पर अकबर खड़े स्वामी हरिदास का भक्ति रसलीन गायन सुन रहे हैं।

ऐतिहासिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में तानसेन का स्वामी हरिदास का शिष्य होना प्रमाणित नहीं है, क्योंकि अबुल फजल के 'आईने-अकबरी' और 'अकबर नामा' के अनुसार अकबर के दरबार में आने से पहले या बाद मे तानसेन के वृन्दावन जाने और स्वामी हरिदास से संगीत शिक्षा लेने की बात, कहीं नहीं है। किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में यह उल्लेख भी नहीं है कि स्वामी हरिदास अपने शिष्यों को या किसी को भी संगीत शिक्षा दिया करते थे।

किशनगढ़ शैली का वह तैल चित्र जिसमें स्वामी हरिदास, तानसेन और अकबर के सामने गायन कर रहे हैं, की तथ्यात्मक वस्तुस्थिति यह है कि, यह तैल चित्र, किशनगढ़ शैली के उपरोक्त चित्रकार का अपनी आँखों देखी स्थिति वाला तैल चित्र नहीं हैं। वस्तुत: किशनगढ़ के राजा सावंतसिंह, अन्यतम कृष्ण भक्त थे, जो राजकाज से विरक्ति और कृष्ण भक्ति के प्रबल आकर्षण के कारण अपनी रानी विष्णुप्रिया 'बनी-ठनी' के साथ वृन्दावन आकर बस गये और जीवन भर (1748-1764 ई.) वृन्दावन में ही कृष्ण भक्ति में लीन रहे। राजा सावंतसिंह 'नागरी दास' नाम से कृष्ण भक्ति काव्य लिखा करते थे। वे हरिदास जी के अनुयायी थे और सखी संप्रदाय/हरिदासी संप्रदाय में दीक्षित थे। निधन उपरांत वृन्दावन में ही उनकी और रानी 'बनी-ठनी' की छत्रियाँ बना दी गई जो 'नागरी कुंज' में अवलोकनीय हैं।

राजा सावंतसिंह 'नागरीदास' के जीवन काल में उनके साथ उनके राज्य किशनगढ़ के सभी विधाओं के कलाकार वृन्दावन आए, और उन्हीं में से किसी कलाकार ने राजा की कृष्ण भक्ति और स्वामी हरिदास भक्ति से ओतप्रोत ''तानसेन और अकबर के समक्ष, स्वामी जी के भक्ति रस के पदों के गायन'' की जनश्रुतियों को सन् 1760 में भव्यतम तैल चित्र में चित्रित कर दिया, जिसका चित्र में चित्रित अकबर, तानसेन और स्वामी हरिदास से कोई वास्तविक संबंध नहीं है। तानसेन का निधन सन् 1589 ई. में आगरा में हुआ, और वहीं उनका अंतिम संस्कार कलाकारों द्वारा गायन-वादन की शव यात्रा के साथ किया गया। कालक्रम की दृष्टि से उपरोक्त चित्र तानसेन के स्वर्गवास से 171 वर्ष बाद का है, जो ''तानसेन को स्वामी हरिदास का शिष्य या निधिवन में गुरु समाधि के पास तानसेन समाधि होना'' प्रमाणित नहीं करता।

रीवा दरबार में तानसेन

अकबर के दरबार में आने से पहले तानसेन रीवा के राजा रामचन्द्र बघेला के दरबार में थे। अकबर के दरबार में तानसेन का आगमन सन्-1562 में हुआ। राजा रामचन्द्र, तानसेन के ध्रुवपद गायन पर इस कदर फिदा थे कि उन्होंने खुश होकर तानसेन को एक करोड़ सोने की मोहरें ईनाम में दीं। दरअसल अकबर के दरबार के ''जैन खाँ'' नामक गायक ने तानसेन के अप्रतिम गायन की बहुत अधिक प्रशंसा अकबर से की, कि इस युग के बेमिसाल गायक तानसेन को अकबर के दरबार की शोभा बढ़ानी चाहिये। जैन खाँ पहले खुद भी राजा रामचन्द्र के दरबार में रह चुका था। इस पर अकबर ने राजा रामचन्द्र से तानसेन की माँग की। राजा ने तानसेन को देने से इन्कार कर दिया। तब अकबर ने तानसेन को आगरा लाने के लिये सेना भेजी और मजबूरन तानसेन को अकबर की सेवा में उपस्थित होना पडा। अकबर ने तानसेन का गाना पहली बार सुनकर उन्हें एक लाख रुपये दिये। इसीलिये तानसेन राजा रामचन्द्र को कभी नहीं भूल सकते थे।

अकबरी दरबार में तानसेन

मुगल सम्राटा अकबर ने तानसेन को अपने दरबार के सबसे बड़े संगीतकार के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उन्हें 'कण्ठाभरण वाणी विलास' की उपाधि दी थी। अकबर के प्रधान वजीर, जीवनी लेखक तथा दरबारी नवरत्न अबुल फजल अपने ग्रंथ 'आईने-अकबरी' में राज दरबार के जिन 36संगीतकारों की जानकारी देते हैं, उनमें तानसेन अपने 3 संगीतकार पुत्रों और 5 कलाकार शिष्यों के साथ अकबर के दरबार प्रतिष्ठित थे।

चूंकि बादशाह अकबर, सीकरी के सूफी संत शेख सलीम चिश्ती का भक्त था और उनका बहुत अधिक सम्मान करता था। अत: अकबरी दरबार में पहुँचते ही तानसेन पीर शेख सलीम चिश्ती के परम भक्त हो गये।

ऐसी मान्यता थी कि शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से जहाँगीर का जन्म हुआ। इसीलिये अकबर ने 1571 ई. में आगरा से स्थानांतरित करके फतेहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बनाया। सीकरी 1585 ई. तक लगातार 14 वर्ष राजधानी रहा। शेख सलीम चिश्ती, तानसेन और अन्य गुणियों का गाना सुनते थे, लेकिन वे तानसेन का गायन बहुत पसंद करते थे। वे जीवन भर तानसेन का गायन सुनते रहे, और अपने इन्तकाल के दिन भी उन्होंने तानसेन का गाना सुना, जिसका उल्लेख ''जहांगीरनामा'' में मिलता है। इस विषय में एक अनोखी कहानी मिलती है कि शेख सलीम चिश्ती ने अपनी

मौत के दिन तक तानसेन को बुलवाकर उनका गायन सुना और प्राण त्याग दिये।

कहानी इस प्रकार है कि ''अकबर से शेख सलीम चिश्ती ने कहा कि, जिस दिन शाहजादा सलीम किसी पद्य का वाचन करे, उसी दिन तुम समझ लेना कि हमारा मृत्युकाल निकट है। अकबर ने हरम में आदेश दिया कि कोई व्यक्ति बालक सलीम के सम्मुख कोई शैर न पढ़े। अकबर का विचार था कि, शिशु सलीम न कोई शेर सुनेगा, न पढ़ेगा। भवितव्यता टलती नहीं। हरम में किसी बाँदी की कोई परदेसी नातेदार औरत आई और शहजादे को गोद में खिलाते-खिलाते एक प्रसिद्ध शेर गुनगुनाने लगी। शिशु सलीम को वह शेर याद हो गया और वह उसे दुहराने लगा। परदेसिन को अकबर के उपयुक्त आदेश के विषय में ज्ञात न था। शहजादे के मुँह से शेर सुनकर सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित और परेशान हो गए। डरते-डरते अकबर को यह समाचार दिया गया। अकबर ने भावी के समक्ष नतमस्तक होकर, यह सूचना शेख सलीम चिश्ती को भिजवा दी। उन्होंने उसी दिन तानसेन को बुलवाकर गाना सुना और प्राण त्याग दिये।''

तानसेन की गायकी : दो संगीत पद्धतियों का विलक्षण संगम

अकबर के दरबार में बड़ी संख्या में संगीत कलाकार थे, जिनकी सूची अबुल-फजल ने ''आईने-अकबरी'' में दी है यह कलाकार ज्यादातर ग्वालियर के निवासी थे और राजा मानसिंह तोमर और नायक बैजू की उस संगीत परम्परा के अनुयायी थे, जो ''राग-रागिनी वर्गीकरण को मानती थी और जिसका आधार ''मूर्च्छना'' पद्धति थी। तानसेन खुद मूर्च्छना पद्धति के तो पंडित थे ही, साथ ही वे ईरानी मकाम पद्धति के भी गहरे जानकार थे। ''रागमाला'' नामक ग्रंथ में तानसेन के एक ध्रुवपद से मूर्च्छना पद्धति की यह बात प्रकट होती है :-

धैवत पंचम मधिम गंधार ऋखव खरज सुर साधि
साधि साधि गुनी निषाद रे।
तेरहों अलंकार बाईस श्रुति साधिवाद उचारि
सरिगमपधनिस सुधर सनि धपमगरे।
त्रिविधि त्रिविधि त्रिविधि सुरन मधि तृतीय
तृतीय तृतीय विस्तृत जानत विद्‌मान रे।
सप्त सुर तीनि ग्राम, इकई मूर्च्छना,
छतीस भेद नादवाद तानसेन विधान रे

ग्वालियर परम्परा के कलाकार सात स्वर गुप्त-सात स्वर प्रकट का प्रयोग करते थे, जैसा कि गुप्त स्वरों का संबंध मूर्च्छना पद्धति से और सात प्रकट स्वरों का संबंध मेल गायन पद्धति से है।

ग्रंथ ''संगीत सार'' में तानसेन की मूर्च्छना पद्धति की गायकी के ध्रुवपद हैं। तानसेन अपने एक ध्रुवपद में किसी गायक से कह रहे हैं कि ''कल्लिनाथ, हनुमान और भरत के मत में कौन-कौन सी ध्वनियाँ होती हैं ? यदि तुम प्रवीण गायक हो, तो गाकर सुनाओ और प्रमाणित करो कि वे श्रुतियाँ कौन-कौन सी हैं ? किस स्वर में कितनी-कितनी है ? बारह विकृत और वादी, अनुवादी और विवादी स्वर कौन-कौन से हैं ? उनमें ग्रह, अंश, न्यास में प्रमुखता किसकी है ? उन तीनों ग्रामों का विस्तार सरगम द्वारा करो। 63 अलंकार, 49 कूटतान तथा औड़व-षाड़व करके दिखाओ, जिससे गुण प्रमाणित हो। यदि पूर्ण गुणी हो तो गाकर सुनाओ। शाह अकबर के समक्ष विद्या की वास्तविक परख होती है।

जैसा कि अकबर के दरबार में ग्वालियर परम्परा के मर्मज्ञ कलाकारों के साथ-साथ ईरानी परम्परा के भी विदेशी कलाकार थे और अकबर को गुणियों के संसर्ग से दोनों ही परम्पराओं के रहस्यों का ज्ञान हुआ। ''आईने-अकबरी'' में अबुल-फ़ज़ल ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। यह स्थिति नवीन प्रयोगों के लिये बहुत अनुकूल थी। इस कारण नवीन रागों के नये-नये प्रयोग हुए, जिसमें तानसेन ने ''मियाँ की मल्हार'' (मल्हार), मियाँ की टोड़ी, मियाँ की सारंग और दरबारी जैसे राग रचे। दरबार में ही रामदास ने ''रामदासी मल्लार'', घोंघू (घुण्डी) ने ''घुण्डी की मल्लार'' चरजू ने ''चरजू की मल्लार'' आदि नवीन राग संगीत जगत को दिये, जो अकबर की प्रेरणा से हुई कोशिशों का परिणाम थे। राग 'दरबारी कानड़ा' को आमतौर पर तानसेन द्वारा अकबर के दरबार में रचित राग कहा जाता है लेकिन संगीत विद्वान इस विषय में सहमत नहीं हैं और पंडित विष्णु नारायण भातखन्डे के अलावा किसी ने भी यह नहीं कहा है। पंडित भातखण्डे ने ''हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति-क्रमिक पुस्तक मालिका-4 में पृष्ठ-652-653 पर 'दरबारी कानड़ा' के राग परिचय में लिखा है कि ''मियाँ तानसेन ने अकबर बादशाह को प्रसन्न करने के लिये राग 'दरबारी कानड़ा' प्रचलित किया।''

''अताई'' नहीं थे तानसेन

तानसेन के विषय में और अधिक जानकारी फकीरउल्लाह के ''राग-दर्पण'' से मिलती है। फकीरउल्लाह खुद, चूँकि संगीत मर्मज्ञ था और तानसेन के गायन में पखावज संगति करने वाला ''भगवान पखावजी'' फकीरउल्लाह के घनिष्ठ संपर्क में रहा। तानसेन के कुछ पुत्र-पौत्रों और शिष्यों से भी फकीरउल्लाह का प्रत्यक्ष परिचय था। फकीरउल्लाह ने 'राग-दर्पण' में उन लोगों को 'अताई' लिखा है जो संगीत के क्रिया पक्ष से ही परिचित हो, लेकिन नायक वे हैं, जो संगीत शास्त्र का अध्ययन करके, शास्त्र अनुसार संगीत प्रस्तुत करते और सिखाते हैं। इस दृष्टि से फकीरउल्लाह के अनुसार अकबरी दरबार के कलाकार 'अताई' थे, जिनमें सर्वप्रथम थे तानसेन।'' संगीतज्ञ, फकीरउल्लाह के उपरोक्त मत से सहमत नहीं हैं। तानसेन न तो निरक्षर थे और न संगीत के सिद्धांत ज्ञान से शून्य थे। वे स्वयं खुसरो की मकाम पद्धति के पंडित थे और ग्वालियरी मूर्च्छना गायकी के तो मर्मज्ञ थे ही, जो राजा मानसिंह और नायक बैजू प्रणीत गायकी थी। तानसेन के ध्रुवपदों में रस, अलंकार, नायिका-भेद, प्रताप वर्णन, प्रबोध, वैराग्य,

देवी-देवताओं से लेकर सूफियों की स्तुति अर्थात् ध्रुवपद के सभी पक्ष और सारी विशेषताएँ मिलती हैं।

तानसेन की कब्र

कुछ ऐतिहासिक स्रोतों में तानसेन के नाम के आगे ''मियाँ'' लिखा मिलता है, जैसा कि ''आईने-अकबरी'' में अबुल-फ़ज़ल ने तानसेन को 'मियाँ तानसेन' लिखा है। ग्वालियर शहर के हजीरा इलाके में मुहम्मद गौस के मकबरे के पास जो कब्र है, वह तानसेन की कब्र बताई जाती है, जिससे यह शुबहा होता है कि तानसेन मुसलमान हो गये थे, कारण कि तानसेन के दो मुसलमान पुत्र तानतरंग खाँ और विलास खाँ थे। शाहजहाँ ने विलास खाँ के दामाद लाल खाँ को 'गुनसमन्दर खाँ' की उपाधि दी थी। लेकिन तानसेन के मुसलमान हो जाने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। तानसेन के दो हिदू संगीतज्ञ पुत्र हमीर सेन और सूरत सेन थे। विलास खाँ, हमीर सेन और सूरत सेन के बारे में फकीरउल्ला के 'राग-दर्पण' में स्पष्ट जानकारी मिलती है। लेकिन अबुल फ़ज़ल के ''अकबर नामा'' से यह जानकारी मिलती है कि 1589 ई. में जब तानसेन की मृत्यु आगरा में हुई, तो उनकी शव यात्रा के साथ शाही गवैए और संगीतजीवी कलाकार गाते बजाते हुये, शादी की बारात जैसा उत्सव मनाते हुए अंतिम संस्कार स्थल तक गये। स्पष्ट है कि, किसी मुसलमान के इन्तकाल के जुलूस में गाते-बजाते हुए जाना पूरी तरह निषिद्ध है। 'अकबर नामा' में तानसेन की कब्र का कोई उल्लेख नहीं है। यदि तानसेन ग्वालियर में मुहम्मद गौस की कब्र के पास दफनाये जाते तो अबुल-फ़ज़ल इसका जिक्र अकबरनामा में ज़रूर करते।

इससे स्पष्ट है कि तानसेन मुसलमान नहीं थे, औ उनकी एक मुस्लिम पत्नी भी थीं, जबकि हिन्दू पत्नी से उनके पुत्र सूरत सेन और हमीर सेन हुए जिनका स्पष्ट उल्लेख ''राग-दर्पण'' में मिलता है, जैसा कि मुहम्मद शाह रंगीले के दौर में भी तानसेन के संगीतज्ञ पुत्र रहीम सेन मौजूद थे।

जहाँ तक तानसेन के नाम के आगे मियाँ शब्द होने का उल्लेख कहीं-कहीं पाया जाता है, ''मियाँ'' शब्द एक सम्मान सूचक विशेषण है, जो सम्माननीय व्यक्तियों के लिये मुगल शासनकाल में प्रयुक्त होता रहा हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तानसेन के सूफ़ियों के साथ घनिष्ठ संपर्क के कारण, 'मियाँ' विशेषण उनके नाम के आगे लगा। मुसलमान शासक अपने सामन्तों और कृपापात्र व्यक्तियों को ''मियाँ, मिर्जा, खाँ'' जैसी उपाधियों से विभूषित करते रहे हैं। उदाहरण के लिए जयपुर नरेश 'मिर्जा राजा जयसिंह'। बंगाल और बिहार के कई प्रतिष्ठित हिंदुओं में नाम के पीछे खाँ 'विशेषण' लगा हुआ मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि उनके किन्हीं पूर्वजों को मुस्लिम शासकों द्वारा 'खाँ' की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

मुहम्मद गौस के मकबरे के पास तानसेन की कब्र होने की एक मात्र सूचना तत्कालीन ग्वालियर राज्य के पुरातत्व विभाग के उपसंचालक श्री एम.बी. गर्दे द्वारा मुहम्मद गौस के मकबरे में मौजूद कब्र के पास एक सूचनात्मक तख्ती लगाने से होती है कि यह तानसेन की कब्र है। लेकिन इस सूचना का कोई पुष्टिकारक ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इसलिये यह सूचना अविश्वनीय है।

इस कथन की कोई ऐतिहासिक प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती कि मुहम्मद गौस सूफी फकीर थे या वे तानसेन के संगीत गुरु भी थे। मुहम्मद गौस ने अपने ग्रंथ ''जवाहर खम्स'' की रचना 1523 ई. में की थी, जबकि उनकी उम्र 21 वर्ष थी। इस तथ्य का उल्लेख 'मुआसिरूल-उमरा' नामक ग्रंथ में है। इसके अनुसार शेख मुहम्मद गौस का जन्म वर्ष 1502 ई. होता है। इस लिहाज से तानसेन का जन्म वर्ष 1493 ई. माना जाता है, अर्थात् मुहम्मद गौस तानसेन से बहुत छोटे थे। अत: उनके, तानसेन का गुरु होने की कोई गुंजाइश नहीं है। मुहम्मद गौस और तानसेन के संपर्क-संबंध आदि की जानकारी भी सूफ़ियों के किसी ग्रंथ में नहीं है।

तानसेन और बैजू की संगीत-प्रतियोगिता ?

लोक प्रचलित कहानियों में एक जनश्रुति तानसेन और बैजू की अकबर के दरबार में संगीत प्रतियोगिता की भी है, जो पूरी तरह काल्पनिक है। इन लोक आख्यानों में एक आख्यान यह भी है कि बैजू, तानसेन के साथ संगीत-प्रतियोगिता के लिये ग्वालियर आया था और तानसेन ने अपने चमत्कारी गायन के असर से हिरनों को बुलवा लिया और पत्थर पिघला दिया। इस प्रकार तानसेन ने बैजू को हरा दिया। अकबर के दरबार में तानसेन और नायक बैजू का कभी मेल नहीं हुआ, और न बैजू अकबरी दरबार में कभी आये ही। इस संगीत प्रतियोगिता की असलियत ''मुल्ला अबुल कादिर बदायूँनी'' ने अपने इतिहास ग्रंथ ''मुन्तखबुत्तवारीख'' में इस प्रकार बयान की है, कि

''अमीर खुसरो की ईरानी मकाम पद्धति के दिग्गज सूफ़ी संगीत मर्मज्ञ 'शेख बंझू' ने अकबर के शासन काल के 25वें वर्ष (10 मार्च 1578से 29 जनवरी 1579 के बीच किसी समय) राजधानी फतेहपुर सीकरी जाकर, दरबार के गायक-कलाकारों को ललकारा।

नतीजे में 'शेख बंझू' और 72 वर्षीय तानसेन की संगीत प्रतियोगिता का आयोजन दरबार में किया गया। इस प्रतियोगिता के वक्त अबुल फ़ज़ल के पिता-शेख मुबारकउल्लाह नागौरी भी वहाँ मौजूद थे।'' ''मुल्ला अबुल कादिर बदायूँनी'' ने काफी विस्तार से इस प्रतियोगिता का वर्णन अपने उपरोक्त इतिहास ग्रंथ में किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाम की ध्वन्यात्मक समानता जैसे ''बैजू'' और 'शेख बंझू', के कारण तानसेन और उनके गुरु नायक बैजू के बीच, संगीत प्रतियोगिता की रोचक अफवाह दूर-दूर तक फैली और असल प्रतियोगी 'शेख बंझू' के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं है।

तानसेन की बहु आयामी संगीत कला

तानसेन प्रणीत राग 'मियाँ की तोड़ी मियाँ की सारंग, मियाँ की मल्लार और दरबारी कानड़ा' उनकी अप्रतिम कालजयी रचनाएँ हैं। इस प्रकार नये रागों की रचना से संगीत-विकास तो तानसेन ने किया ही, उन्होंने ध्रवपदो ंकी विषयवस्तु में परिवर्तन किये तानसेन रचित रागों में कुछ राग अभी भी अप्रचलित हैं, जैसे 'चौराष्ट', 'मेघेन्द्र', त्रिवर्ण राग तथा रागिनियों में 'भैरवी गणेश', 'महीअरी टोडी', 'सिदूरापरज' इत्यादि। इसी प्रकार तालों में भी 'चम्पक', 'चर्चरी' और 'नव परज' अप्रचलित ताल हैं।

तानसेन की गायन कला को नायक बैजू और नायक बख्शू के मार्ग दर्शन में ऐसा निखार हासिल हुआ जो आगे जाकर ध्रुवपद की ''गौहर हार वाणी'' की अदायगी के चमत्कार में तब्दील हो गया कि, जो तानसेन का गायन सुनता, वह उनकी बेमिसाल गायकी का कायल हो जाता। अकबरी दरबार में और भी अच्छे गायक और ध्रुवपद रचयिता थे, लेकिन ध्रुवपदों की रचना और गान में तानसेन जैसा कोई न था। तानसेन अकबरी दरबार के नवरत्नों में नवम् अर्थात ''सुमेरू'' के रूप में विख्यात ''रत्न'' थे। वे जितने महान गायक थे, उतने ही महान कवि थे वे स्वयं पदों की रचना करके उन्हें स्वरबद्ध गाते थे। तानसेन का कंठ स्वर अत्यंत पुष्ट और पाटदार था। उनकी शैली परिपक्व थी और गान अत्यंत मोहक था। स्वर और वाणी की देवी सरस्वती हैं, जिनसे सभी को वाणी की स्फूर्ति और गायन कला प्राप्त होती है। तानसेन उसी वाणी के विलास थे, जो उनके कण्ठ का आभरण थी। इसलिए अकबर ने उन्हें 'कण्ठा भरण वाणी विलास' उपाधि दी थी। शाही दरबार के गायक तानसेन का अत्यधिक सम्मान करते थे। यह भी गौरतलब है कि तानसेन के पहले या उनके जीवन काल में या उनके बाद भी किसी बादशाह ने अपने राज गायक को ऐसी उपाधि नहीं दी, जो अकबर ने तानसेन को दी थी।

तानसेन अपने दौर के बेहतरीन गायक होने के साथ-साथ उच्च कोटि के वाग्गेयकार भी थे। उन्होने दो हजार से अधिक ध्रुवपदों की रचना करके अपने समय के संगीत को समृद्ध बनाया। इनका वर्गीकरण तीन समूहों में किया गया है :-

1. साधना-काल के गीत, जिनकी रचना ग्वालियर में हुई। इन गीतों में कला की सिद्धि के लिये ईश्वर की आराधना की गई है।
2. राजा रामचन्द्र के दरबार में रचित गीत जिनकी रचना रीवा में हुई। यह गीत सुखी और सात्विक जीवन का बखान करते हैं।
3. अकबरी दरबार में रचित वे ध्रुवपद, जिनकी रचना आगरे में हुई और जो दरबारी भोग-विलास को अभिव्यक्त करते हैं। इस वर्ग के गीत या तो शाह अकबर को संबोधित हैं या अकबर को ईश्वर जैसा मानकर रचे गये हैं, जैसे नाद का रूपक बांधते हुए तानसेन ध्रुवपद गायकी की तारीफ में कहते हैं: -

शुद्ध कल्याणः चौताल

नाद नगर बसायौ, सुरपति महल छायौ,
उन्चास कूट तान-अक्षर बिश्राम पायौ,
गीत छंद तत बीतत धन सिखर-कंचन ताल,
काल के किबाड़, अलाप ताली हीरा पैठायौ,
पाट नग लगै, खरज जंजीर, त्रैबट कुंजी,
तामैं ध्रुपद सौ नग छिपायौ
आरोही, अवरोही, अस्थाई, संचारी जबार,
अरब-खरब औ करोर मन मिलाप कंठ लायौ,
जौहरी मिया तानसेन, गाहक जलालदीन,
जिन याकौ मील कीनौ, अकबर पारखी गायौ

तानसेन ने समय की मांग को भाँपकर ध्रुवपद में विविधता, लय, पलटे आदि की जरूरत का अंदाजा लगाया और तरानों की लोकप्रियता का समावेश ध्रुवपद में इस कौशल से किया कि, वे ध्रुवपद के शास्त्रीय ढांचे में रच-बस गये। यह नई रचनाएँ थीं- त्रिवट और चतुरंग। तानसेन के ध्रुवपद प्रत्येक अवसर जैसे वर्षा, होली, बसंत आदि ऋतुओं के लिये, रस और अवसर के अनुकूल थे।

तानसेन के ध्रुवपदों की भाषा, समूचे मध्य देश की भाषा यानि ग्वालियरी भाषा थी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं कि, ''जिसे हम बृज साहित्य कहते हैं, वह पहले ग्वालियरी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध था, जो आज की बृज-बुंदेली-कन्नौजी का सम्मिलित साहित्य था। सीकरी और आगरा दोनों बृजभूमि में हैं, जो अकबर की राजधानी रहे। आगरा, ग्वालियर और आस-पास के प्रदेशों की भाषा में गाये जाने वाले गीत 'ध्रुवपद' कहलाते थे, जिनमें जनता के सभी वर्गो को रिझाने की क्षमता थी। यह परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि मार्गी संगीत के स्थान पर राजा मानसिंह तोमर के दौर के ध्रुवपद के रूप में एक ऐसी गायन शैली, ग्वालियरी गायकी में प्रचलित हुई कि जिसने मध्य देश में पद रचना के माध्यम से परिनिष्ठित काव्य भाषा का स्वरूप स्थिर किया। इसलिये समूचे मध्य देश का सांस्कृतिक केन्द्र ग्वालियर रहा।'' जाहिर है कि इन ध्रुवपदों में ग्वालियरी लोक भाषा का प्रयोग हुआ था और लोक जीवन के विविध रंग रूपायित थे।

तानसेन रचित ध्रुवपद

तानसेन द्वारा दो हजार से भी अधिक ध्रुवपदों की रचना की गई थी, लेकिन उनके द्वारा रचित सारे ध्रुवपद नहीं मिलते। जो

उपलब्ध हैं, उनमें कुछ ध्रुवपद निम्नानुसार प्रस्तुत हैं। इसमें तानसेन रचित राग ''श्री-चौताल'' में निबद्ध एक ध्रुवपद जो स्व. पं. राधेश्याम डागुर की स्मृति में था और उनसे पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट ''रसरंग'' को 61 ऐतिहासिक ध्रुवपदों के साथ प्राप्त हुआ था, जिसे पं. रसरंग ने स्वयं संपादित ध्रुवपद ग्रंथ ''दुर्लभ ध्रुपद'' में, इस ध्रुवपद की स्वरलिपि तैयार करके प्रस्तुत किया है। यह ऐतिहासिक संगीत ग्रंथ, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत और कला अकादमी से वर्ष-2016में प्रकाशित है, जिसमें पृष्ठ-106और 209 पर निम्न दो ध्रुवपद प्रकाशित हैं। शुद्ध कल्याण में निबद्ध ध्रुवपद में अकबर का मूल नाम जलालुद्दीन दृष्टव्य है :-

श्रीराग : चौताल

ज्ञान पत गनेश, विद्यापत महेश,
पृथवी पत नरेश, बलपत श्री हनुमान
सरित पत सिंधु, गिरवरपत सुमेर,
राजन पत इन्द्र, धर्मपत दान।
बाजन पत मृदंग, अर्जुनपत बान,
पंक्षिनपत गरुड़, पतन पत पान
शाहन पत-दिल्ली पत 'अकबर',
'तानसेन' पत-भक्तन पत श्री राम।

ध्रुवपद

निम्न ध्रुवपद संगीत के इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें संगीत के प्राचीन 6आदि रागों का उल्लेख गौरतलब है :-

षरज साधैं गाऊँ, मैं स्रवनन सुनहूँ सुनाऊँ।
वेद पढ़ाऊँ, जोई-जोई कहै सोई-सोई उचराऊँ।।
भैरव-मालकोष-हिंडोल-दीपक-श्रीराग-मेघ सुर ही लै आऊँ
'तानसेन' कहे सुनौ हो सुघर नर, यह विद्या पार नहीं पाऊँ।।
नादाब्धेस्तु परं पारं, न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात् तुम्बं वहति वक्षसि

राग भैरव : चौताल

चंद्रबदनी मृगनयनी ता मधि तारका गंग,
पूतरी कालिंदी, इहि विधि डोरे बनाय कीन्ही तिरवैनी!
छूटी पोत कंठ, दीपक मुख की ज्योति होत,
तामैं गुप्त प्रकट सरस्वती मिली ऐनमैंनी!!
सुन्दर रूप अनुपम शोभा,
त्रिभुवन पाप-ताप हरनी, करत सुख-चैनी!
'तानसेन' कौ करौ निरमल तू,
दाता भक्त जनन की, बैकुंठ की नसैनी!!

राग हिंडोल : चौताल

ऋतुराज वसंत
सरस सुन्दर रितुराज बसंत आवत भावत,
कुंज-कुंज फूले फूल,
भँवर गूँज, कोयल पंचम गान मतावै नर-नारी।
कानन-कानन फूटत चमेली बकुल गंधराज
बेली मोतिया गुलाब सुगंध मनोहारी।।
पवन चलत मंद-मंद बिछुरि गंध चहुँ दिसि गुंजत,
झनन नाद पंचम सुर पूरत सबहि बन भूरी।
रति-पति भज जुवक-जुवति नाचत-गावत हिंडोल माति,
गोविंद-मंगल 'तानसेन' गायो री।।

राग यमन : तीन ताल

देश सखी पवन पुरवैया, ठौर-ठौर रूखन कौ हलवौ।
आछी-नीकी कारी-पीरी घटा घुमड़ आई,
ता मधि कृष्ण-स्यामा जू कौ चलिवौ।।
कुंज-लता द्रुम-लता सखी री, मंद कुसुम नीके कर खिलवौ।
मीन अचल ह्वे जल जमुना कौ,
'तानसेन' के प्रभु कौ कबहुँक मिलवौ।

राग मेघ : धमार

रिमझिम बरसै आज बदरवा, पिया विदेस,
मोरी थरथरात छतियाँ, निस-दिन मन भावै,
नैन हू न नींद आवै, दामिनी दमकति लागै,
उन बिन कल न परत, नाथ-नाथ करि धावै।।
रह्यौ न जाय घड़ी-पल-छिन, तन दहै मोर,
आय मदन मो खेजत अवसर पावै,
निकसत नहीं प्रान, ह्वै रह्यौ चित पाषान,
ता पर कर बखान 'तानसेन' गावै।।

रागिनी भीमपलासी : चौताल

ए ही सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूर्छना,
गीत छंद धोवा माठा प्रबंध त्रेवट तान।
आरोही-अवरोही अस्थायी संचारी वादी-विवादी
संवादी अनवादी जान।।
खरज रिषभ गंधार मध्यम पंचम
धैवत निषाद तान आन।
सा ग म प नि सां सां नि ध प म ग रे सा
'तानसेन' कह्यौ ग्रंथ प्रमान।।

राग सोरठ : तीन ताल

सुन्दर छबि छाजत राजत मोहन, कहा कहौं रूप की निकाई,
मोसौं बरजौ न जाई, आली ऐसौ श्याम कन्हाई।
स्रवन कुंडल मकराकृत, कटि पीत बसन, हाथ लकुटिया,
मुख मुरली, मधुर धुनि गावत सुहाई।।
सप्त सुर और तीन ग्राम लै बाईस सुरति,
उनंचास कूट तान लाग-डाट कसल छाई।
औढ़व-षाड़व संपूरन आतक -खातक स्वरांतक,
बादी बिवादी संवादी अनुवादी 'तानसेन' लै रिझाई।।

राग भैरव : चौताल

चन्द्र वदनी, मृग नयनी, हंस गमनी, चली है पूजन महादेव।
कर लिए अग्रथार, पहुँपन के गुंथे हार,
सुख दियरा जराए, देवन में देव महादेव।।
सोरह सिंगार, बत्तीसौ आभरन, सज नख-सिख सुन्दरदाई,
छवि बरनी ना जाय, है निरमल कर मंजन सेव।
'तानसेन' कहै धूप-दीप-पुहुप-पत्र-नैवेद्य लै,
ध्यान लगाय, हर-हर-हर आदि देव।।

ध्रुवपद

यह ध्रुवपद अत्यधिक ऐतिहासिक महत्व का है, क्योंकि इसमें प्राचीन काल से चले आ रहे संगीत की मध्यकालीन इतिहास के दौर में क्या स्थिति थी, यह दर्शाता है-

नाद अगाध बहुत गये हैं साध
सुर-नर-मुनि-गंधर्व, रचि-पति गये सिद्ध सब हार।
काहू न पायौ पार, करि-करि थाके विचार,
कमलासन हरि, शिव-श्रवनधार, अंजनीनंदन कहै उचार,
सरस्वती तरन लागी हिय में दो तूँबा डार।।
सप्त सुर, तीन ग्राम, इकईस मूर्छना, बाईस सुरति,
उनंचास कूट तान, अंश न्यास विकृति धार।
छै राग, छत्तीस रागिनी, औडव-षाडव के भेद, सुद्ध मुद्रा,
सुद्ध बानी, 'तानसेन' कर्‌यौ विनान, जाकौ सूझत न आर-पार।।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. मुगल दरबार कवि संगीतज्ञ- भाग-1 (1999), एवं भाग-2 (2003) : डॉ. शालिग्राम गुप्त : साहित्य भवन प्रा. लि. जीरो रोड, इलाहाबाद
2. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार- (1976) सुलोचना यजुर्वेदी और आचार्य बृहस्पति : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली
3. मुसलमान और भारतीय संगीत (1976) आचार्य बृहस्पति : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली
4. तानसेन (व्यक्तित्व एवं कृतित्व) (1986) : डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी, विद्या मंदिर प्रकाशन, मुरार, ग्वालियर
5. ग्वालियर की हिन्दी-काव्य-परम्परा और विकास (शोध प्रबंध : 2005) : डॉ. उपेन्द्र सक्सेना 'विश्वास' : अंकुर सांस्कृतिक अकादमी, विनय नगर ग्वालियर
6. भरत कालीन ध्रुवा गायन : डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे : संगीत पत्रिका, (ध्रुवपद-धमार अंक) संगीत कार्यालय, हाथरस
7. सहस रस (1972) : नायक बख्शू के ध्रुपदों का संग्रह : डॉ. प्रेमलता शर्मा : संगीत नाटक अकादेमी, नई दिल्ली
8. मानसिंह और मान कुतूहल (1954) : डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी, विद्या मंदिर प्रकाशन, मुरार, ग्वालियर
9. संगीत चिन्तामणि : आचार्य बृहस्पति : संगीत कार्यालय हाथरस
10. गोपाल नायक : सम इममोर्टल्स ऑव हिन्दुस्तान म्युजिक (1990) : डॉ. सुशीला मिश्र, दिल्ली
11. तानसेन की संगीत साधना : श. श्री परांजपे- तानसेन समारोह स्मारिका (1969) ग्वालियर
12. तानसेन और बैजू बावरा : डॉ. राधेश्याम द्विवेदी
13. दुर्लभ ध्रुपद : पण्डित रोश्याम डागुर : स्वरलिपि, पुनर्लेखन और गायन- पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट ''रसरंग'' (2016) : उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादमी, भोपाल

- सी-72, विद्या नगर, (निलय अस्पताल के पीछे)
होशंगाबाद रोड, भोपाल-462026, मोबाइल : 9424400130

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्विवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेंसी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेंसी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला-संस्कृति के अछूते पहलुओं पर सर्जनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबन्ध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई, अथवा सुवाच्य लिपि में अंकित हों। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेज सकते हैं।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें।

-संपादक

विश्व कविता

सुविख्यात रोमानिया कवि मारिन सोरेसक्यू की कुछ कविताएँ

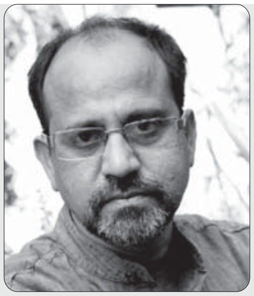

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

रोमानिया में जन्मे मारिन सोरेसक्यू (1936-1996) ने कविता के अलावा नाटक और निबंध भी लिखे साथ ही अनुवाद कार्य में भी संलग्न रहे। उनकी कविताओं में एक अलग तरह के कौतुक और परिहास को भी देखा जा सकता है। परंतु यह कौतुक और परिहास कवि के लिए एक साधन मात्र है, साध्य नहीं। अपनी कविताओं में वे मनुष्य और उसकी अस्मिता उसकी स्वतंत्रता और उसके जीवन संघर्षों से जुड़े प्रश्नों से जूझते दिखाई देते हैं ।

निकटता

यह मुल्क कितना छोटा है
स्त्रियों की लंबी काली बरौनियाँ
सरहद के पार न निकल जाएं
इसलिए
कसकर बाँध दी गई हैं
उनकी गर्दन के पीछे।
बरौनियाँ कुछ ज्यादा ही
लंबी हो गईं थीं।
समय-समय पर
मृत लोगों को भी खिसकाया जाता है
यहाँ-वहाँ
कूटा जाता है भाप के हथौड़े से
और मिला दिया जाता है काँक्रीट में
क्योंकि यह मुल्क बेहद छोटा है ।
जब तब
जबरन खोल दी जाती हैं कब्रें

और पाइप बिछाए जाते हैं,
मेरे दादा की खोपड़ी से होकर
बहता है ठंडा पेयजल।
बेहद ठंडा पानी है
अपने साथ बहाकर लाया है
देवदार की टहनियाँ
हांलाकि पहाड़ यहाँ से बहुत दूर है,
पर मेरे दादा
वहाँ घूमते फिरते थे
और यह सब वे
अपने ज़ेहन में रखे हुए हैं।

यह रास्ता

मन में कुछ विचार करते हुए
हाथों को पीछे बाँधे
मैं चलता हूँ रेल की पटरियों के बीचों बीच
एक दम सीधे रास्ते पर
पूरी गति के साथ
ठीक मेरे पीछे
आती है ट्रेन
जिसे कुछ भी नही पता मेरे बारे में
यह ट्रेन
कभी नहीं पहुँच पायेगी मुझ तक
क्योंकि मैं हमेशा थोड़ा आगे रहूँगा
उन चीजों से
जो सोचती नहीं हैं
फिर भी
यदि यह पूरी निर्दयता के साथ
गुजर जाती है मेरे ऊपर से
तब भी
रहेगा कोई न कोई हमेशा
अपने ज़ेहन में ढेर चीजें़ लिए
हाथ पीछे बाँधे
इसके आगे चलने को तैयार
मेरे जैसा कोई
हर वक्त
जबकि यह काला दैत्य
भयानक गति से करीब आ रहा है
पर कभी भी पकड़ नहीं पायेगा मुझे।

शोक गीत

आँखों की रोशनी
धुँधली पड़ चुकी है
खत्म हो चुकी है
होंठो की मुस्कराहट
पर दिन अभी खत्म नहीं हुआ है
सड़कों पर हँसी ठिठोली करते
लोगों की आवाजाही जारी है
यह सब कुछ
कितनी अच्छी तरह से तयशुदा है
कि मैं गायब हो जाऊँगा इस भीड़ से
और कोई ध्यान नहीं देगा
कुछ भी नहीं होता
इस दुनियां में सिवाय इसके
कि वस्तुओं की अवस्था नहाई हुई है
निर्दयता में।

यतीन्द्रनाथ 'राही' के गीत

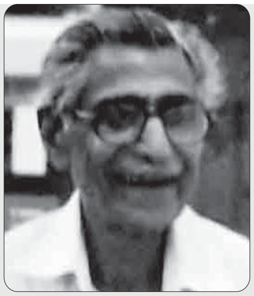

यतीन्द्रनाथ 'राही'

जन्म : 31 दिसम्बर, 1926 जिला मैनपुरी (वर्तमान फिरोज़ाबाद) (उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ : पुष्पांजलि, बाँसुरी (काव्य संग्रह), रेशमी अनुबंध (गीत-ग़ज़ल), सांध्य के ये गीत लो... सहित 15 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

सम्पर्क : ए-54, रजत विहार, होशंगाबाद रोड, भोपाल

मो.: : 09993501111

दर्शन क्या होगा

जगी नहीं पीड़ा अन्तस में
राग नहीं अनुराग नहीं है
वाणी के श्रृंगार मात्र से
गीतों का सर्जन क्या होगा ?
दर्द जहाँ मीरा का होगा
होंगे वहीं कहीं मनमोहन
कबिरा की चादर में लिपटे
सोते हैं सारे सम्मोहन
साँस-साँस में अनहद के स्वर
और भला अर्चन क्या होगा ?
कण-कण में हिमगिरि विराट है
कतरे-कतरे में है सागर
सूरदास के मुँदे नयन में
कुंज-कुंज गोपी नटनागर
महासृष्टि के तृण-पल्लव से
और बड़ा दर्पण क्या होगा ?

जिसने खोजा उसे मिल गया
सीपी में सागर का मोती
सूरज बाँधे उड़ी फिर रही
ये नन्ही छवियाँ खद्योती
घूँघट के पट खुले नहीं तो
प्रियतम का दर्शन क्या होगा ?

अर्थ हैं दुहरे

भरी इस भीड़ में केवल
हमी गूँगे निरुत्तर हैं
किसी के शब्द अति बौने
किसी के अर्थ हैं दुहरे।
मिले लम्हात कुछ ऐसे
किनारा कर गए अपने
मसलते हाथ बैठे हैं
धरे जो दूर के सपने
हवाएँ हो रहीं शातिर
अँधेरे घिर रहे गहरे।
अकेले हैं, बियावाँ है
टसकते-पाँव के छाले
गए दिन वे हमारे
साथ चलते कारवाँ वाले
मिले अब आँख के अन्धे
कही कुछ कान के बहरे।
सभी के दर्द अपने हैं
किसी की कौन सुनता है
यहाँ हर एक धुनका
स्वयं को ही रोज़ धुनता है
मुखौटों पर मुखौटे हैं
समझ आते नहीं चेहरे।

काठ-घन्टियाँ

बदली हवा
ज़िन्दगी बदली
क्या ऋतु आयी है।
किसने हाथ मरोड़ा
किसने टँगड़ी मारी है
जेब काट ली किसने
धर मीठी पुचकारी है
बस चुप रहना
बात न करना
जगत हँसाई है।
हाथ मिला
छाती से चिपके
वाणी में रस घोला
अपने महा झूठ का
किसने
रहस कभी क्या खोला ?
रिश्तों की छोटी दरार
अब बढ़कर खाई है !
बातें निरी काठ की घण्टी
क्या सुनना क्या गुनना
प्यार महूरत है दो क्षण का
फिर धुनना ही धुनना
अन्तिम सत्य
हाथ जो आया
बस रुसवाई है।

■

देवेश पथ सारिया की कविता

देवेश पथ सारिया

प्रकाशन :
राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, कथादेश, प्रगतिशील वसुधा, समावर्तन, कथाक्रम, कादंबिनी, परिकथा, बनास जन, जनपथ आदि पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित हो चुकी है।
सम्पर्क : श्रीमती सरोज शर्मा
माडा योजना हॉस्टल पोस्ट ऑफिस के पास, राजगढ़ (अलवर) राजस्थान-301408

बाइपोलर प्रेम

क़िस्से की शुरुआत में तुमने सोचा था-
'उस तरफ एक भावनाशून्य इंसान रहता है
जो ज़ेब में हाथ डाले, बेतकल्लुफ, ठहरा-सा है'
इसलिए तुमने ठानी ज़िद पहेली को सुलझाने की

मुझे लगा था
कि उस तरफ रहती है एक लड़की
जिसके आकाश में सिर्फ मैं ही मैं हूँ
पता नहीं क्यों हूँ, पर हूँ

अपनी निष्ठुरता के दिनों में
मैंने पूछा था एक बार तुमसे
कि क्या तुम बाइपोलर हो
जैसा कि तुमने अपने बारे में लिखा है
और तुमने कहा था कि जान जाऊँगा मैं

जब मैं उदासीनता के धरातल पर था
तुम प्रेम के ध्रुव पर खड़ी मुझे पुकारती रहीं
कहाँ मालूम था तुम्हें
कि बेतकल्लुफ़ परतों के अंदर
बसता है एक कोमल-कवि

एक दिन मैंने शुरु कर ही दी तुम तक की यात्रा
चलते रहना प्रेम के घाट तक
सोचकर कि इस बार प्रेम होगा सुलभ
'जिगर' साहब की वाणी होगी झूठी-
ना 'आग का दरिया' होगा, ना 'डूब के जाना'

तुम्हें अपने ही ध्रुव पर खड़े रहना था
वही केंद्र बिंदु था मेरे लिए सृष्टि का
पर तुम चलने लगीं प्रेम के विपरीत दिशा में
जो हमारा बीच में थोड़ी देर का मिलना था
आमने-सामने से गुज़र जाना भर था

मानो किसी शरणार्थी कैंप में
हुल्लड़ से पहले का मिलना
तुम भावनाओं से बहुत दूर
धुँधलाते, मिटते गए चित्रों की
दिशा में विलीन होती गई
मेरे उदासीनता के धरातल को भी पार कर
एक कँटीले धरातल पर चल पड़ीं
जिससे लहूलुहान होते रहे मेरे पैर

क्योंकि अब मैं प्रेम में था
मैं कूद पड़ा घाट से
आग, काँटों और अनिश्चय का सामना कर
तुम्हें वापस ले आने
यही होती है नियति हर बार प्रेम की
जिससे बचने को मैं पहेली बना खड़ा था
मेरी परिणिति में तुम्हें मिल गया
तुम्हारी आरंभिक पहेली का जवाब
मुझ पर हुआ ज़ाहिर कि तुम हो बाइपोलर

इस बीच तुम कितनी बार
बदलती रहीं अपनी मन:स्थिति
तय करती रहीं मेरा डूबना या तैरते रहना
बस प्रेम के ध्रुव पर लौटने का साहस ना कर पाईं

तुम बदलोगी अपना ध्रुव फिर किसी दिन
मुझसे फिर से होगा प्रेम तुम्हें
मेरे एक और गूढ़ पहेली बन
खो जाने के बाद

■

चन्द्रसेन विराट की ग़ज़लें

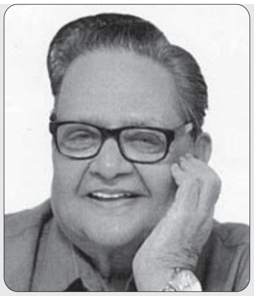

चन्द्रसेन विराट

जन्म : 3 दिसम्बर, 1936 इंदौर (म.प्र.)
निधन : 15 नवम्बर, 2018
प्रकाशन : गीत-संग्रह (चौदह), हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह (बारह), मुक्तक-संग्रह (आठ), दोहा-संग्रह (दो), कविता-संकलन ?
संप्रति : पं. भवानीप्रसाद मिश्र पुरस्कार, साहित्य भूषण सम्मान सहित एवं कई प्रादेशिक एवं प्रदेश से बाहर की साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हुए थे।

माथे पे धूल मल के

कितनी ही सुब्हें शामें यूँ ही गईं निकल के
फूटे न बोल कोई भी गीत या ग़ज़ल के

माना न हमने कहना, खाना पड़ी है ठोकर
हमको कहा गया था, चलना सँभल सँभल के

उठो, चलो कि चलकर, मंज़िल के पास पहुँचो
मंज़िल न आने वाली है पास खुद ही चल के

मत व्यर्थ ढाल इनको, रहने दे आँख में ही
मोती बनेंगे आँसू इन सीपियों में पल के

बीते पे रो न इतना, हो आज का अनादर
जी वर्तमान पूरा, सपने भी देख कल के

जिस रंग का था शीशा, उस रंग की दिखी है
देखा है ज़िन्दगी को चश्मा बदल बदल के

इक चाँद देख बोला-लूँगा तो लूँगा ये ही
बच्चे-सा हठ किया है, दिल ने मचल मचल के

यजमान रूप ने भर हमको चषक दिया तो
दुश्मन न, दोस्तों ने देखा है खूब जल के

सच बात ये है उसकी आया है कम समझ में
जो दाद दे रहा है इतना उछल उछल के

अगला जनम मिले तो चाहूँगा धन्य होना
इस देश, इस धरा की माथे पे धूल मल के

सूर्य का सोना नहीं है

सूर्य का सोना नहीं है धूप में भी
चाँद की चाँदी नहीं है चाँदनी में
वह नरक देखा सचाई का कि ऐसी
कल्पनाएँ तक नहीं अब ज़िन्दगी में

रोष का ज्वालामुखी था बर्फ ओढ़े
स्फोट की संभावनाएँ ही नहीं थीं
क्या अजब संयोग वह फूटा अचानक
फँस गये हम तेल लावे की नदी में

शेष सब सामान्य दोनों में मनुज की
अक्ल के कारण हुआ है हादसा यह
जानवर में जंगलीपन है अभी भी
आदमीयत पर कहाँ है आदमी में

शुर रसों की रोशनी है तेज इतनी
आँख चुँधियाये, पलक भिंच जाएँ दोनों
कुछ दिखाई दे नहीं उस मंच पर तो
मैं न आना चाहता हूँ रोशनी में

एक रूपा जो हमारी दृष्टियों की
डोर में अक्सर उलझने लग गई थी
हमने उलझायीं पतंगें जानकर ही
उस पड़ोसी घर की छत की अलगनी में

क्यों हृदय कवि का दिया मेरे विधाता!
सत्य कहने में नहीं संकोच जिसको
रूप-रस की प्यास है अब भी दृगों को
कामना अब भी रही है कामिनी में

भूख, बेकारी, गरीबी, जुल्म शोषण,
युद्ध, अत्याचार है, आतंक ज्यादा
क्या बड़प्पन है कि यह विकृत जगत ले
आ गये हम उस सदी से इस सदी में

■

कहानी

बेड़नी

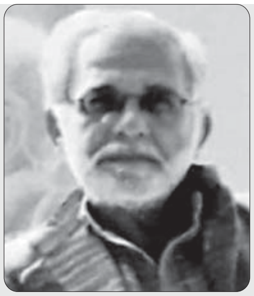

मनोहर काजल

''रामकली ने जहर खा लिया तुलसीबारे में, अभी-अभी फगुनिया कह रही थी।'' सावित्री ने यह बात देहरी पार करते ही बड़ी मामी से कही, जो मुझे कटोरे में सब्जी परोस रही थी।

''क्या... ?'' आश्चर्य और अविश्वास से मैं एकदम चौंक पड़ा और मेरे हाथ में लिया हुआ रोटी का टुकड़ा थाली में गिर गया। बड़ी मामी का हाथ भी सब्जी परोसते-परोसते झटके से रुक गया। कुछ क्षणों के लिए जैसे एक सनाका-सा खिंच आया था वातावरण में। तभी एक कोने से, अपने झुर्रीदार हाथों से सुमिरनी टटोलती नानी की घरघराती हुई आवाज गूँजी, ''चुड़ैल को मरना ही था तो मसानघाट में जाकर मरती, कुलच्छनी तुलसीबारे में कहाँ करने गई। जाते-जाते तुलसीबारा भी भ्रष्ट कर गई।''

किसी भी मौत.... और इस पर भी पवित्रता-अपवित्रता का आरोप... कैसी भी थी रामकली, पर.... आगे जैसे मैं कुछ सोच न सका। थाली में हाथ धोकर चौके से बाहर निकल आया।

''अरे लल्ला रोटी तो खाता जा...'' पर बड़ी मामी की आवाज कहीं बहुत पीछे रह गई थी।

बड़े दरवाजे की देहरी पारकर मेरे कदम तेजी से गाँव के कच्चे रास्ते को पार करते हुए तुलसीबारे की ओर बढ़ते जा रहे थे। पर मन जैसे पंख लगाकर पहले ही तुलसीबारे में पहुँच चुका था। कैसे रामकली जहर खाकर पड़ी होगी ? कैसे उसने जहर खाया होगा ? फिर जहर खाया ही क्यों ? और वह भी तुलसीबारे में ? कितने-कितने चक्कर काट रहा था मन।

''जुहार, राजा भैया!'' सामने से किसी ने आदरपूर्वक जुआर किया तो संकोच के साथ मैंने हाथ जोड़ दिए, जहाँ एक तरफ तन-मन को अजीब-सा बड़प्पन घेर लेता, वहीं दूसरी तरफ संकोच की परिधि भी बढ़ जाती। जब भी अपने मामा के गाँव आता हूँ तो गाँव के छोटे-बड़े सभी इसी तरह से आदर देते हैं, बड़े मामा की गाँव में अच्छी इज्जत थी। पर मुझे जब अपने से कोई बड़ा इस तरह आदर देता है, तो बड़ा अजीब-सा लगता है। कई लोग तो पैर भी छूने लगते। भाँजे को वैसे भी गाँव में बहुत मानते हैं, यहाँ तक कि मेरी बड़ी मामी मेरा नाम नहीं लेती थी। छोटी मामी शहर की थी, कभी-कभार नाम ले लेती तो नानी डाँट देती थीं, ''ससुरी, भनेज का नाम लेत है'' और छोटी मामी का शहरी चेहरा एकदम छोटा हो जाता था।

उस समय भी जैसे मैं संकोच में सिमट गया। जुहार करने वाले ने मेरे लिए रास्ता भी छोड़ दिया था और मैं दृष्टि झुकाए ही आगे बढ़ गया। आने वाले के पीछे से आती हुई परछाई सामने ही चली आ रही थी। कोई स्त्री थी। मैंने रास्ता बदलकर ऊपर की पगडंडी पर पैर रखा ही था कि पीछे से तेज आवाज सुनाई पड़ी, ''ससुरी, सामने से ही फेंटा मारत चली आत है। देखत नहीं, कुंवरजूं आ रहे हैं ?''

उस तेज आवाज से जैसे मैं भी कुछ हड़बड़ा-सा गया और दृष्टि सामने आने वाली पर अटक गई। हरे रंग की साड़ी की सुनहरी कौर के बीच से झाँकता हुआ गोरा मुखड़ा, बड़ी-बड़ी, कज्जल-कोर, कँटीली आँखें और उनमें से झाँकती हुई चंचल हँसी... जैसे ही एकबारगी पलक थमी, आँख से अंतर तक वह छवि उतर गई। और पैर की चप्पल पगडंडी पर से खिसक जाने से मैं गिरते-गिरते बचा।

भारी-भारी तोड़लों की आवाज के बीच खीं-खीं की एक अल्हड़ तेज हँसी गूँजी, और शर्म से लाल होकर मेरी कनपटी तक झनझना उठी।

''अरे...रे...रे... क्या हुआ कुंवरजूं ?'' शायद पीछे से गाँववाले ने मुझे फिसलते हुए देख लिया था।

''कुछ नहीं।'' कहकर मैं तेजी से आगे बढ़ गया। पीछे पलटकर देखने को बहुत मन किया पर फजीती मैं भला कैसे देखता। पर वह हँसी जैसे मेरे तन-मन को झकझोर गई थी।

वह गाँववाला अपनी स्त्री को गरियाने लगा था, ''ससुरी, शरम नहीं लगत, इस तरह खीं-खीं हंसल करके हँसत है ?'' पर मैंने जैसे कुछ नहीं सुना। मैं जो बहुत पहले गाँव की चौपाल में नाचने आई उस स्त्री के बारे में सोच रहा था जो बात-बात पर खूब खीं-खीं करके हँसती थी और नाचने पर खूब फिरकनियाँ लगाती थी। न जाने क्यों मुझे वह हँसी बहुत अच्छी लगी थी। वही हँसी अब भी मेरे दिमाग में

गूँज रही थी। मैंने पलटकर देखा, स्त्री-पुरुष दोनों की परछाइयाँ काफी दूर निकल गई थीं। अचानक स्त्री ने पलटकर देखा, और मैंने एकदम चेहरा घुमा लिया। लगा, फिर से चप्पल फिसल जाएगी।

अचानक मुझे लगा, यह स्त्री वही रामकली ही थी, चौपाल में नाचने वाली बेड़नी। ठोड़ी पर गुदा हुआ नीले रंग का फूल अभी भी मेरी आँखों की कोरों में चटख रहा था पर काले भौंरों जैसे बालों के बीच झाँकती टिप-टिप करती वह मोटी सिंदुर-रेख... और गोरे माथे पर वह बड़ी-सी टिकुली... मन में उठते हुए ऊहापोह विचारों को जमीन जैसे कहीं भी छूने नहीं दे रही थी।

रामकली तो बेड़नी थी... बेड़नी। नाम मात्र से ही जैसे एक कचोटता हुआ-सा जुगुप्सा का भाव मन में भर गया। इसकी शादी कैसे हो गई ?

पहली बार मैंने गाँव में बेड़नी शब्द सुना तो बड़ा अजीब-सा लगा, ''भला बेड़नी क्या होती है ?'' सुनकर मेरा ममेरा भाई शिब्बू बड़ी जोर से हो-हो करके हँस पड़ा था, ''बेड़नी पतुरिया को कहते हैं, शादी-ब्याह में नाचती हैं। गाँव के चौपाल में उस नाचनेवाली को नहीं देखा ?'' और शिब्बू के याद दिलाते ही, तीखे नाक-नक्शोंवाला गोरा चेहरा मेरी आँखों में तैर आया। बड़ी-बड़ी काली, कँटीली आँखें... काजल की रेखा जैसे कान तक खिंची हुई थी। और झिलमिल करती हुई दंत पंक्तियों के बीच पान की पीक से भरी हुई हँसी... जब चौपाल के ऊपर गहराते हुए मटमैले अँधेरे में भभकती हुई गैसबत्तियों के प्रकाश में नाचती हुई रामकली को देखा, तो देखता ही रह गया था। इस किशोर उम्र में नारी का सौंदर्य और आकर्षण कोई विशेष मायने नहीं रखता-पर इस समय सचमुच मुझे लगा था कि इतनी सुंदर औरत मैंने कभी नहीं देखी, सिनेमा के पर्दे पर भी नहीं।

परंतु मेरी उत्सुकता उस समय अजीब-सी घृणा में बदल गई जब शिब्बू ने बताया कि यह बेड़नी अच्छी औरतें नहीं होतीं। ये कभी-कभी अपना शरीर भी बेचती हैं।

और मैं आश्चर्य से मुँह फाड़े अपलक शिब्बू के खुले मुख की तरफ देखे जा रहा था। क्या सचमुच ऐसी ही होगी ? नहीं, नहीं, रामकली ऐसी हो ही नहीं सकती। अंदर से कोई अदृश्य-सी चोट मेरे अंतर्मन को कचोट रही थी।

इसके बाद जब भी मैंने रामकली को देखा, मन में घृणा के साथ-साथ एक अजीब-सी उत्सुकता भी बँध जाती। और एक दिन तो गजब ही हो गया।

खूब रात हो गई थी चौपाल में, खड़े-खड़े मेरे पैर दर्द करने लगे थे। मैं बार-बार शिब्बू से कहता, ''चल, घर चलें। नींद आ रही है।'' पर शिब्बू ''थोड़ी देर और, बस'' कहकर फिर मशालों की रोशनी में फिरकनियाँ लगाती रामकली को देखने लगा। चकरी की तरह घिन्नाती हुई रामकली की नंगी, गोरी, दूध-सी सफेद कमर और अधखुले टखनों पर सचमुच गैसबत्तियों का पीला प्रकाश सोने के पानी की तरह चिपका लग रहा था, जिसमें न चाहते हुए भी आँखें बार-बार चिपक जातीं और फिर वहाँ से जैसे छूट ही नहीं पाती। पर अंदर-ही-अंदर एक अपराध-भावना भी सहमी बैठी थी जो रह-रहकर रोक बैठती कि मुझे यह सब नहीं देखना चाहिए, यह सब अच्छा नहीं है... पर...

और अपनी इसी उधेड़बुन के बीच देखा, सलाम बजाती हुई रामकली मेरे बगल में बैठे हुए ठाकुर के पास आई। ठाकुर के हाथ में दस रुपए का कड़कता हुआ नोट जो था। आते ही जैसे गजब हो गया, नाचते-नाचते रामकली एकदम ठाकुर की गोद में कटे वृक्ष की तरह गिरी और उसने अपने दाँतों के बीच दस के नोट को दबा लिया। ठाकुर जब तक रामकली के मुख पर झुकता, वह बिजली की तरह छिटककर मेरी ओर आ गई। मुझे लगा, कहीं रामकली मेरे ऊपर ही न आ गिरे, मैं इसी डर से पीछे हटा, तब रामकली ने चट से मेरे बाएं गाल को चूमा और हँसती हुई पानी की गोल-गोल चक्करदार लहरों की तरह दूर चली गई।

रामकली की इस हरकत से पूरे चौपाल में एक ठहाका गूँज उठा और सबकी दृष्टि मेरे मुख पर आ टिकी। शर्म, खीज और गुस्से से जलती हुई मेरी आँखें जैसे तरतराने को हो आई थी और मैं सीधा घर भाग आया था। मारे उत्तेजना के उस रात एक क्षण के लिए भी मैं सो नहीं पाया था।

और शिब्बू को तो जैसे मजाक का एक नुस्खा मिल गया था, ''ऐ, कैसा लगा था रे ? मुझे करती न ऐसा, तो मैं तो...'' कहते-कहते अजीब-सी हँसी हँस उठता शिब्बू और मुझे उसके टेढ़े जमे हुए सामने के दाँत बेहद घिनौने लगने लगते।

आज उन्हीं सब बातों को याद करके न जाने मन कैसा-कैसा हो रहा था। उसी रामकली ने आज जहर खा लिया था। ''नहीं, नहीं।'' अनजाने में ही जैसे आत्मा चीखकर प्रताड़ित-सी हो उठी।

उस दिन जब पहली बार रामकली के बारे में शिब्बू ने बताया कि बेड़नी बुरी औरतें होती हैं, तो मैं विश्वास नहीं कर सका था और आत्मा किसी अनजाने दर्द से कचोट उठी थी। आज इसी रामकली के जहर खाने की बात मन-प्राणों को अंदर तक उकेलती हुई मथ गई थी। बढ़ते हुए कदमों में और तेजी आ गई, मैं जल्दी-जल्दी तुलसीबारे में पहुँचकर रामकली को देखना चाहता था। क्या सचमुच रामकली ने जहर खा लिया है !

आँखों को देखने से क्या मिल जाता है, कोई नहीं जानता, फिर भी कैसी सागर की-सी उत्ताल लहर भरती मन-प्राणों में, जो किनारा छुए बगैर पीछे नहीं लौटती।

ठीक ऐसे ही तो उस दिन मैं रामकली को देखने गया था, जब पता चला था कि ठाकुर ने कुछ दिन के लिए रामकली को रख लिया है.... ऐसी बातें जल्दी पता नहीं चलती पर शिब्बू पता नहीं कहाँ से यह सब खबर कर लेता। रामकली के बारे में तो उसे जैसे ही

सबकुछ मालूम था।

ठाकुर की हवेली गाँव की सबसे बड़ी हवेली थी। गाँव का सबसे धनी-मानी किसान वही था। उसी हवेली का एक हिस्सा एकदम अलग-थलग था जो कंचन पोखरा की कगार पर बना था। उसे सब रंगमहल कहते थे। बाहर से एकदम टूट-फूट गई थी इमारत, पर भीतर से अभी भी बहुत मजबूत थी। उसी में रामकली का डेरा था।

जब मैं कंचन पोखरा के किनारे पहुँचा तो रामकली तालाब में डुबकी लगाकर लोटे से सूर्य भगवान को अर्ध्य दे रही थी। एकदम दूध-सी उजली, सफेद, गीली साड़ी में लिपटी हुई गुलाबी देहयष्टि और कमर से नीचे तक लहराते हुए एकदम भौंरे जैसे काले बाल।

कुछ क्षणों के लिए जैसे मेरी आँखें और कैशोर्य की देहरी को लांघता हुआ मन उस सद्य:स्नात संगमरमर की-सी भव्य देहयष्टि में चिपककर रह गया था। अचानक रामकली ने पलटकर मेरी ओर देखा, ''अरे, बबुआ तुम ?'' तब तक जैसे मुझे भी अपनी मोहासन्न स्थिति का आभास हो गया था। शर्म और संकोच से मेरी कनपटी तक झनझना उठी और मैं एकदम उल्टे पैर भाग खड़ा हुआ।

मैं स्वयं नहीं जानता कि उस दिन कंचन पोखरा पर शिब्बू के कहने पर मैं क्या देखने गया था ? और फिर रामकली के सामने पड़ने पर शर्म से मुख छिपाता क्यों भाग खड़ा हुआ था ? या फिर रामकली के सामने पड़ने की हिम्मत नहीं होती थी मेरी और यदि वह मुझे अच्छी नहीं लगती थी तो कंचन पोखरे का रोज चक्कर क्यों लगाता था मैं ?

शिब्बू की नजरों से बचकर मैं रोज भाग जाता और गुलेल से पोखरे में तैरती हुई बटकुइयों को निशाना बनाता रहता। गुलेल चलाने का शौक मुझे बचपन से ही था। उसके पीछे माँ से कई बार मार भी खाई थी- ''कुलच्छना कहीं का ! बामन (ब्राह्मण) होकर मलेच्छों की तरह गुलेल चलाता है।''

पर गुलेल मुझसे नहीं छूटी। उस दिन भी मैं कंचन पोखरे में बैठा था हाथ में गुलेल लिए। सफेद कमल के ऊपर बटकुइयां किलोल कर रही थीं। उन्हीं को निशाना बनाने की सोच रहा था, पर मैं जाने क्यों, मैं सबकुछ भूलकर उनकी जलक्रीड़ा देख रहा था। बड़ा अच्छा लग रहा था वह सब।

इतने में उनके बीच कहीं से सुनहरी बटकुइयों का जोड़ा आ बैठा। भूले-भटके ही कभी सुनहरी बटकुइयों का जोड़ा इस इलाके में दीखता था। उसके पर सोने की तरह झिलमिल करते हैं और बहुत खूबसूरत होते हैं। शिब्बू ने तो यहाँ तक कहा था कि जिसके पास सुनहरी बटकुइयों के पर होते हैं, उसके पास खूब सोना इकट्ठा हो जाता है। ठाकुर के यहाँ थे बटकुइयों के पर, बैठक में जड़े हुए रखे थे।

सोने की मुझे चाह नहीं थी। परंतु पर सचमुच बहुत सुंदर थे। मैंने गुलेल में पत्थर रखकर निशाना साधा। सुनहरी बटकुइयों का जोड़ा एकदम बेखबर होकर सफेद कमलों के बीच एक-दूसरे के पीछे भाग रहा था। आगे वाला शायद नर था जिसके सिर पर गहरे-नीले-सुनहरे रंग का चंदोबा-सा तना था और वही चंदोबा मेरा निशाना था। सन्न की आवाज के साथ पत्थर छूटा और उछलते हुए जलकणों के बीच नीला चंदोबा बिखरकर रह गया। क्रीं...क्रीं....क्रीं... करती हुई सब बटकुइयां उड़ गई।

''राम, राम, कितने निर्दयी हो बबुआ तुम ! क्या बिगाड़ा था उस बेकस पंछी ने तुम्हारा ?'' रामकली की आवाज सुनकर मैं एकदम चौंक पड़ा। सुनहरी बटकुइयां को मारकर अपने निशाने की सफलता पर जो एक अनजानी-सी पाशविक खुशी, तन-मन को हिलोर गई थी, वह अचानक ही जम-सी गई।

बटकुइयों का बिछुड़ा जोड़ा... क्रीं... क्रीं...क्रीं... करता हुआ मेरे ऊपर चक्कर काटने लगा था।

''राम, राम, राम ! बेचारे का जोड़ा बिछड़ गया ! तुम बामन होकर भी गुलेल चलाते हो बबुआ ?'' रामकली तब तक और पास आ गई थी, और मैं पत्थर के बुत की तरह नि:शब्द आंखें झुकाए खड़ा था।

और अचानक ही जैसे मैंने एक दृढ़ निर्णय ले लिया। पलटकर हाथ में फंसी हुई गुलेल को पूरी ताकत से मैंने कंचन पोखरे में सफेद कमलों के बीच फेंक दिया और रामकली से दृष्टि मिलाए बिना बगल से निकलने लगा तो रामकली ने मेरा हाथ पकड़ लिया, ''बबुआ, रुको तो।''

पर आत्मग्लानि की पीड़ा से दंशित मन जैसे आँखों की जलती हुई कोरों से भरभराकर फूटना चाहता था। मैंने झटके से अपना हाथ रामकली के हाथ से छुड़ा लिया और घाट की सीढ़ियों को पार करता हुआ भाग निकला, रामकली पुकारती ही रह गई।

उसके बाद मैं कभी कंचन पोखरे पर नहीं गया और न ही शिब्बू के लाख मनाने पर रामकली का नाच देखने गया। पता नहीं क्या हो गया था मुझे। मैं स्वयं नहीं जानता था पर मैं रामकली की उन काली बड़ी-बड़ी आँखों के सामने नहीं पड़ना चाहता था उसके बाद।

क्या था वह सब, मैं नहीं जानता, लगता कि सब बचपन की भावुकता-भर थी, और मैं बहुत-कुछ भूल भी गया था। पर उस दिन, जब वह टिप्-टिप् करती सिंदूर की रेखा और वह हँसी देखकर मेरा पैर फिसल गया था और मैं गिरते-गिरते बचा था, तो मुझे एकाएक सब याद आ गया था।

मुझे लगा, मैं भूला ही कब था वह सब, और उस दिन खेत से लौटते हुए, शिब्बू को मैंने बीच रास्ते में पकड़ लिया और खोद-खोदकर रामकली के बारे में सब पूछ लिया। शिब्बू से ही मुझे रामकली की रामकहानी सुनने को मिली। दोबारा दशहरे के मेले में जब रामकली गाँव में नाचने के लिए आई, तो ठाकुर ने पहले की तरह अपना कंचन पोखरावाला रंगमहल खाली करवा दिया, पर रामकली इधर न रुककर कछार पर गोवर्धन अहीर के यहाँ रुकी। ठाकुर ने खूब जोर लगाया कि रामकली रंगमहल में आ जाए पर जैसे रामकली ने भी

ठान लिया था। और फिर गोवर्धन अहीर के ऊपर किसी का बस नहीं था। सीधे के लिए एकदम सीधा, और टेढ़े के लिए एकदम टेढ़ा। गाँव में उसकी जोड़ का कोई लठैत नहीं था। पता नहीं, रामकली ने उस पर क्या जादू कर दिया कि वह ठाकुर से भिड़ने को भी तैयार हो गया। ठाकुर ने समझा, पतुरिया तो पतुरिया, जिधर पैसा झरेगा, उधर ही बहेगी। पर वाह री रामकली, उसने ठाकुर के रुपयों को देखा तक नहीं। अब गाँव की इज्जत का सवाल बन गया था। रामकली बेड़नी थी। पैरों की जूती पैरों में ही सोहती है। पर बैठी पंचायत में रामकली ने अपने पैरों के घँघरू उतार दिए और घूँघट खींचकर गोवर्धन की बहू बन गई।

रामकली गाँव की इज्जत बन गई तो ठाकुर को हार माननी ही पड़ी पर समाज द्वारा स्वीकारे जाने के लिए रामकली को प्रायश्चित करना पड़ा, ''सब बप्पा और ठाकुर की मिलीभगत थी।'' कहते-कहते शिब्बू का अब युवा हो आया चेहरा कुछ ज्यादा ही खिंच आया, ''सुहागिन बनने के लिए रामकली को अपना सिर मुड़वाना पड़ा और सात दिन तुलसीबारे में रहकर प्रतिदिन हर घर से भीख माँगनी पड़ी। भीख का आधा हिस्सा तुलसीबारे का था और आधा रामकली के लिए, वही गाँववाले जो रामकली की फिरकनियों पर निछावर होकर नोट लुटाते थे, एक मुट्‌ठी कनक देने में भी घिनाने लगे थे।''

अपने घर में दादी ने एक मुट्‌ठी अनाज भी नहीं देने दिया। कहती थी, ''पतुरिया सुहागिन बनने चली है। इससे अच्छी तो करमजली किसी कुएँ में डूबकर मर जाती।''

गाँव में लगता, सभी धर्म के रखवारे बन गए थे, कोई दो मुट्‌ठी अनाज नहीं दे सका। चिड़ियों और कबूतरों को चुगने के लिए ढेर सारा अनाज घर की औरतें आँगन में बिखेर देती थी पर एक मुट्‌ठी कनक कोई रामकली की झोली में नहीं डाल सका। एक दिन मैं तुलसीबारे की तरफ निकल गया। मंदिर की दीवार से चिपकी बैठी थी रामकली। कहाँ वह टिप-टिप करता हुआ रूप, और कहाँ वह भूख से सूखा सिकुड़ा चेहरा, मुझसे नहीं देखा गया और मैं चोरी से उसे कनक दे आया। बप्पा को कहीं से पता लग गया तो मुझे लताड़कर रख दिया उन्होंने।

''पता नहीं कैसे रामकली ने ये सात दिन काटे होंगे। सब यही सोचते थे कि वह मर जाएगी, पर वह मरी नहीं, और उसी तुलसीबारे की चौखट पर गोवर्धन ने उसकी माँग भरी, रामकली चल नहीं सकती थी तो गोवर्धन उसे गोद में उठाकर अपने घर ले गया। गाँववालों के मुँह पर जैसे झाड़ू फिर गया था।''

''और अब तो वह सुहागिन है, पर...'' आगे कहते-कहते शिब्बू का स्वर जैसे पहले से और भारी हो आया। खिंचे हुए चेहरे पर न जाने कैसा भाव उभर आया था। एक क्षण के लिए मैं शिब्बू के अचानक बदले हुए चेहरे की तरफ देखता रहा फिर पूछ ही बैठा, ''पर, पर क्या ?''

''क्यों ?'' मैं अपनी आकुलता रोक नहीं सका।

''आए दिन गोवर्धन उसे मारता-पीटता है, जलील करता है। कहता है कि अभी भी वह पतुरिया-की-पतुरिया है... किसी से हँस-बोल लेती है तो भूचाल आ जाता है। वही गोवर्धन उसके पीछे ठाकुर से भिड़ने को तैयार हो गया था, अब बात-बात पर उसके ऊपर थूकता है। यदि कोई और होती तो पता नहीं कब की छोड़-छाड़कर भाग जाती, पर वह उसी की माला जपती है, गोवर्धन उसकी चोटी पकड़कर उसे कछार पार खदेड़ देता है और शाम होते ही वह कुतिया की तरह फिर उसी के दरवाजे पर आ खड़ी होती है और उसके निहोरे करती है।''

मैं जैसे इन सब बातों पर विश्वास नहीं कर सका। उस दिन गोवर्धन के पीछे चलती, इठलाती हुई रामकली के ऊपर इतना कुछ बीत गया है ?

आगे सोचने के लिए जैसे कुछ रह कहीं गया था।

मेरे गाँव से चले जाने के बाद रामकली अकसर शिब्बू से पूछती रहती थी, ''वह शहरी बबुआ कहाँ गए ?''

शहरी बबुआ... मुझे जैसे हँसी आ गई पर आश्चर्य भी हुआ। आखिर रामकली मेरे बारे में क्यों पूछती थी ? जब पहली बार मैंने रामकली को देखा था बरमदेव बरगद के नीचे गुलाबी चाँदनी से ढकी बैलगाड़ी पर, तब मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता था और न ही कुछ उत्सुकता थी जानने की। उस दिन भी रामकली ने ही अपने चूड़ियों और गहनों से भरी बाँह उठाकर मेरी तरफ इशारा करते हुए शिब्बू से पूछा था, ''वह शहरी बबुआ कौन है ?'' शिब्बू ने उस दिन अजीब-सी हँसी हँसते हुए बताया था, ''मेरा भाई है। शहर से आया है।''

नदी से नहाकर लौटते हुए अचानक ही शिब्बू की नजर बरगद के नीचे खड़ी गुलाबी चाँदनीवाली बैलगाड़ी पर पड़ी तो उसने मुझे कुहनी मारी, ''अरे, बेड़नी रामकली आई है। चल देखें, मेले में नाच के लिए आई होगी।''

शहर में बहुत-सी नाचनेवालियाँ देखी थीं, वैसी ही कोई होगी शायद, मैंने कहा, ''तुम ही देख आओ, मैं तो घर जाऊँगा।''

सूरज सिर पर आ गया था पेट में चूहे दौड़ रहे थे पर शिब्बू मुझे जबरन खींचकर बरगद तक ले गया। पर मैं दूर ही खड़ा रहा। देखा, एक बहुत ही सुंदर गोरी औरत ढेर सारे गहने और घुटनों तक लहंगा पहने बैलगाड़ी पर बैठी आम चूस रही थी। इतने सारे गहने पहने मैंने पहली बार किसी औरत को देखा था। शिब्बू को शायद वह पहले से ही जानती थी। देखते ही हँसते हुए बोल पड़ी, ''आओ पंडित जी, आम खाओगे ?''

लड़के तो होते ही है लालची, शिब्बू ने लपककर आम ले लिया और मेरी तरफ देखा, मानो कह रहा हो, ''देखा, इसीलिए तो खींचकर लाया था तुझे।''

तभी रामकली ने मेरी तरफ देखकर पूछा था, ''वह शहरी बबुआ कौन है ?'' शिब्बू से मेरा परिचय जानकर वह मुझे भी आम देने लगी तो साफ ना करके शिब्बू के रोकते-रोकते भी घर चला आया मैं। उस दिन भी रामकली शिब्बू से मेरे बारे में पूछती रही थी।

आखिर क्यों पूछती थी वह मेरे बारे में ? कुछ सवाल ऐसे होते हैं जिनका कोई जवाब नहीं होता। यह सवाल भी कुछ ऐसा ही था।

कई बार इस सवाल का उत्तर ढूँढने के लिए मैं नदी के कछार पर निकल जाता था। वहीं पठार पर गोवर्धन अहीर का घर था। दूर से ही आठ-दस गाय-भैंस बँधी नजर आती थीं, पर उस घर के सामने से निकलने की मेरी कभी हिम्मत नहीं पडी।

क्यों ? इस सवाल का भी मेरे पास कोई जवाब नहीं था।

एक दिन अचानक ही मुझे गोवर्धन अहीर के घर जाना पड़ा। नदी की तरफ घूमने के लिए आते समय रास्ते में बड़े मामा मिल गए, ''अरे लल्ला, कछार पर गोवर्धन मिले तो कह देना, मैंने बुलाया है, उसका घर तो जानते हो न ?''

उस समय तो बड़ी सहजता से 'हाँ' कह दिया, पर जब भैंसों की बाड़ी पार करके गोवर्धन के अधखुले दरवाजे के सामने पहुँचा तो जैसे हिम्मत ही टूट गई।

अपनी ही संकोच की सीमाओं में टूटता-जुड़ता कुछ देर तक मैं चुपचाप खड़ा रहा। अंदर से किसी छोटे बच्चे के रोने की आवाज आ रही थी। उस आवाज से जैसे कुछ बल मिला और मैंने जोर से आवाज लगाई, गोवर्धन।

आवाज की गूँजती हुई प्रतिध्वनि के साथ ही उढ़का हुआ दरवाजा खुला और छोटी-सी लड़की को गोद में लिए आधे घूँघट में छिपा नारी चेहरा झांका, ''कौन ?''

''अरे, बबुआ तुम !'' रामकली ही थी, मुझे देखते ही उसने घूँघट के पल्लू को झटके से पीछे फेंक दिया और गोद की लड़की को सँभालती हुई बाहर निकल आई। अंतराल की कोर-कोर में बैठा हुआ संकोच जैसे पूरे शरीर को सिहरा गया।

''गोवर्धन को मामाजी ने बुलाया है, बता देना।'' और मैं जल्दी से पलटकर चलने लगा।

''अरे... रे, बबुआ... कैसे भागे-से आए और भागे-से चल दिए। दो मिनट बैठो तो सही। और फिर कब-कब बामनों के चरण पड़ते हैं हम जैसों की देहरी पर...'' कहते-कहते रामकली ने जल्दी से परधी में चारपाई को बिछा दिया और दौड़कर अंदर से नई दरी लाकर उस पर बिछा दी।

मैं खड़ा था-चुप, संकोच में डूबा। तब तक रामकली फिर बोल पड़ी- 'बामन देवता को बिठाने के लिए भी क्या जबरन करनी पड़ेगी ?'

''नहीं, नहीं,'' अनायास ही घबराकर मेरी जबान लटपटा-सी उठी और मैं धीरे से चारपाई पर बैठ गया। तब तक रामकली भी बच्ची को छाती से लगाकर आँचल से ढाँककर देहरी पर बैठ गई थी।

कितना अजनबीपन-सा आ जुड़ता है ऐसी अजीब स्थितियों में। रामकली शुरू से ही मेरे लिए एक अजूबा-सी बनी रही। बचपन से ही एकदम पास से देखने की ललक, अनजानी-सी भावनाओं से भरी हुई उत्सुकता, फिर उस उत्सुकता के अंतराल में उमसती हुई घृणा हमेशा ही मैंने अपने मन-प्राणों में प्रतिष्ठित विश्वास और आत्मिक आस्थाओं के संबल से नकारना चाहा। सबकुछ समझते हुए भी जैसे मैं अपने को नहीं समझा सका। खैर, मेरा बचपना तो बहुत पीछे छूट गया था, पर आज रामकली के सामने पड़कर मुझे लगा, मैं वहीं पहुँच गया हूँ। अचानक मेरे ऊहापोह विचारों का तांता टूटा, रामकली कुछ कह रही थी, ''कब आए शहर से बबुआ ? उस दिन तो देखकर ही मैं पहचान गई थी पर मरद साथ में था न, इसलिए बोल नहीं पाई। उसे मेरा किसी से बोलना-चालना अच्छा नहीं लगता। पता नहीं, मरदों की जात ही कैसी शक्की होती है ?''

मैंने हठात् दृष्टि उठाकर रामकली को देखा। पता नहीं मैं उसे देखना चाहता था, पर तब तक रामकली अपना आँचल उधेड़कर बच्ची को दूध पिलाने की कोशिश करने लगी थी। मेरी दृष्टि काँपकर वापस लौट आई और मैं अपने को सहेजने की कोशिश में पैर के अँगूठे से जमीन कुरेदने लगा।

''तुमने मुझे पहचाना था उस दिन ? भला कैसे पहचान पाते, खूब बड़ा घूँघट जो किए थी, पर मैं एक ही नजर में पहचान गई थी। अब तो तुम बड़े हो गए हो। वह दिन, जब तुम मुझे देखकर कंचन पोखरे में गुलेल फेंककर भागे थे, मुझे अच्छी तरह से याद है।''

मुझे लगा, जैसे रामकली अपने-आप से बातें कर रही थी। पर, इतना सबकुछ उसे याद है। अंतराल के किसी कोने में अनजाने आश्चर्य की एक अभेद्य शिला खड़ी होती जा रही थी। उस सुनहरी बटकुइयां की क्रीं... क्रीं की दर्द-भरी आवाज मैं अभी भी नहीं भूला था।

''अच्छा बबुआ, अब भी मुझसे डर लगता है ? पहले तो तुम मुझे देखकर ही भाग जाते थे।'' मुझे लगा, रामकली की सहज हँसी में डूबी हुई आवाज किसी मरी हुई जोंक की तरह मेरे संकोच से सिमटते हुए व्यक्तित्व में चिपट गई थी। और मैं लगभग उछल-सा पड़ा, ''नहीं-नहीं, भला मैं तुमसे क्या डरूँगा।'' और अनायास ही मेरी आँखें रामकली के मुँह पर जा टिकी। गोल-तिकोने-गोरे चेहरे पर बड़ी-बड़ी भरी-भरी-सी काली आँखें, उन्हीं के समानुपात में ढली हुई सुघड़ नाक जिसमें छोटी सी सोने की कील चमक रही थी, पतले-पतले होंठों के बीच में छिपी हुई सहज निश्छल हँसी, और ठुड्डी पर गुदा हुआ नीला फूल... शायद पहली बार मैंने अपनी संपूर्ण अंतरंगता से रामकली को देखा था। और अचानक ही मुझे लगा इसमें डरने या झिझकने जैसी तो कोई बात ही नहीं थी, मैं बेकार ही डर रहा था। मस्तिष्क में शिब्बू की बातें अब भी गूँज रही थीं, पर उनकी परछाई भी

रामकली के चेहरे पर कहीं दूर-दूर तक नहीं झलक रही थी।

अचानक रामकली बच्ची को देहरी पर बिठाकर अंदर चली गई, ''जाना नहीं बबुआ... मैं अभी आई।''

अपनी माँ के इस तरह चले जाने से पहले तो बच्ची अपनी बड़ी-बड़ी सहमी हुई आँखों से मेरी तरफ देखती रही, फिर रोने लगी। उसे चुप कराने के लिए मैंने जेब से कलम निकालकर उसे दे दी।

बच्ची अपना रोना छोड़कर सहज भाव से मुस्कराने लगी। बड़ी-बड़ी काली आँखों की कटोरियों में भरे आँसुओं से झलकती हुई मासूम मुस्कान... सच में बहुत भली लग रही थी वह!

अचानक अपने पीछे किसी छाया का आभास पाकर पलटकर देखा तो हाथ में बड़ा-सा पीतल का गिलास लिए रामकली मेरी ही ओर देख रही थी। न मालूम कब से खड़ी थी। जन्मजात संकोच की परछाइयों ने जैसे फिर घेर लिया, फिर भी अपने को सहेजते हुए खड़ा होकर बोल ही पड़ा, ''तुम्हारे जाते ही बच्ची रोने लगी। मैंने अपना कलम दिया तो चुप हो गई। बड़ी अच्छी बच्ची है।'' कहते-कहते मैंने रामकली के मुख पर से दृष्टि हटा ली पर काली, विहँसती हुई आँखों की कोरों में अटके हुए वे अश्रुबिंदु मेरी दृष्टि से न छिप सके, जिन्हें जल्दी से रामकली ने आँचल के छोर से पोंछ लिया था। मैं जैसे कुछ समझ ही नहीं सका।

''अब मैं चलता हूँ, गोवर्धन से जरूर कह देना।''

''अरे बबुआ, दूध तो पीते जाओ। मैं तुम्हारे लिए दूध ही लेने तो अंदर गई थी।''

''मैं दूध तो पीता ही नहीं।''

''तो रुको, मैं जल्दी से चाय बनाकर लाती हूँ।'' रामकली जल्दी से फिर भीतर जाने लगी पर मैंने रोक दिया, ''नहीं-नहीं, रहने दो। मैं चाय भी नहीं पीता।'' और सच में मुझे चाय या दूध जरा भी अच्छा नहीं लगता था। घर में सभी जानते थे कि दूध देखकर ही मुझे मितली आगे लगती है।

काली, भरी-भरी-सी आँखें एक क्षण के लिए जैसे अविश्वास से मेरे ऊपर टिकी रही... फिर उनमें अचानक ही जलजला-सा आ गया।

''साफ-साफ यह क्यों हनीं कहते बबुआ कि मैं छूत हूँ, नीच हूँ, बेड़नी हूँ, इसलिए तुम मेरे हाथ की चाय और दूध नहीं पी सकते।'' कहते-कहते रामकली की तीखी आवाज अपने ही तीखेपन से टूटती हुई भरभरा उठी।

''नहीं-नहीं, यह बात नहीं है।'' रामकली के इस आरोप और अचानक ही उसके बदले हुए रूप को देखकर सचमुच मैं एकदम अचकचा-सा गया था। कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी इस आरोप की, पर रामकली कहती ही गई, ''तुम क्या बबुआ, पूरा गाँव ही छूत समझता है। जब मैं सचमुच पतुरिया थी, तो यही गाँववाले मेरे तलुवे चाटते थे। यही तुम्हारे गाँव का सरपंच... तुम्हारे डेढ़ हाथ का तिलक लगाने वाला मामा... सब मेरी देहरी पर नाक रगड़ते थे। और आज जब मैं एक का हाथ पकड़कर सुहागिन बन गई तो सब थू-थू करने लगे। आज भी सब यही घात लगाए हैं कि मैं वही बेड़नी बन जाऊँ, वही कूल्हे मटकाकर उनकी हवस पूरी करूँ। पर बबुआ, तुम देख लेना... मैं मर जाऊँगी, पर झुकूँगी नहीं, यही गोवर्धन, जिसकी आशनाई की दुहाई पर उसके नाम का सिंदूर भरने के लिए मैंने अपनी जान दाँव पर लगा दी, एक दिन मेरे नाम को रोएगा, जो आज गाँववालों के बहकावे में आकर मुझे जलील करता है, मुझे अभी बेड़नी ही समझता है।''

रामकली का मुख आग और आँसुओं की उमस में जैसे झुलस रहा था, और मैं मोहासन्न-सी, अपलक दृष्टि से उसकी तरफ देखे जा रहा था। आखिर रामकली यह सब मुझे क्यों सुना रही थी? मैं तो एकदम अनभिज्ञ था इन सारी बातों से? फिर बड़े मामा पर इतना बड़ा आरोप?... भीतर-ही-भीतर मन जैसे अव्यक्त कुटता से छटपटा उठा, पर अचानक ही शिब्बू की बातें मेरे कान में गूँज गई- ''रामकली से प्रायश्चित करवाने में ठाकुर और बप्पा की मिलीभगत थी।'' तो क्या सचमुच?

मैंने रामकली की ओर देखा, यह भी मेरी ही ओर देख रही थी। एकाएक उसकी आँसुओं की झिलमिलाती हुई पलकें हल्के से काँपी, ''बबुआ, क्या तुम भी यही समझते हो कि मैं वही पहले जैसी हूँ, जरा भी नहीं बदली?''

... और मुझे लगा, अब मैं अपने को रोक नहीं पाऊँगा, मेरे मन का जन्मजात संकोच एकदम तिरोहित हो चुका था। शायद इसी संकोच के कारण मैं अब तक अपने-आपको छलता रहा था। अब मैं छोटा भी नहीं था, जो रामकली की दृष्टि पड़ते ही भाग जाता। अब मैं.. और मैं एकदम बोल पड़ा, मन की जैसे समस्त भावनाएँ तरंगित हो उठी थी मेरे स्वर में, ''मैं तुम्हें पहले भी ऐसा नहीं समझता था। लोग कहते थे तो विश्वास नहीं होता था। पहले जानता भी तो कुछ नहीं था। पर आज जानकर भी मन में यही विश्वास है कि तुम जरा भी वैसी नहीं जैसा कि लोग समझते हैं। अब तो तुम्हारी सिंदूर भरी माँग और भली लगती है। तुम्हारी बच्ची तो सचमुच बहुत प्यारी है।'' मुझे लगा जैसे मेरा स्वर जरूरत से ज्यादा भावुक हो आया था, पर मैं रुका नहीं, कहता गया। ''चाय-दूध मैं कुछ भी नहीं पीता, मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता। मना करने का मेरा कोई और अर्थ नहीं था... हाँ, यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न हो, तो एक गिलास पानी दे दो। जरूर पी लूँगा। मुझे प्यास भी लगी है।''

रामकली वैसी ही जलजलाती हुई आँखों से मेरी तरफ देखती रही, न जाने क्या देख रही थी कि अचानक ही अछोर तरलता से भरी आँखें एक अजीब-सी विद्रूप हँसी से भर उठीं, ''बबुआ, तुम मेरे हाथ का पानी भी न पियो तो अच्छा है। मुझे आज भी वह दिन याद है जब तुम छोटे थे और तुमने मेरा दिया हुआ आम नहीं लिया था। आज पानी देकर तुम्हारा धरम नहीं बिगाड़ूँगी... और हाँ, तुम मुझे अच्छा समझते रहे, इसके लिए जिंदगी भर तुम्हारी ऋणी रहूँगी।'' कहते-

कहते झटके से रामकली ने एक हाथ से अपनी बच्ची को गोद में उठा लिया और दरवाजा भेड़ती हुई अंदर चली गई।

तरल आँसुओं से झुलसी हुई उस एकदम अनजान और अपरिचित विद्रूप हँसी ने अपमान और ग्लानि से पत्थर की तरह जड़ बना दिया था... अंतर में जैसे सबकुछ सूख गया था... भेड़े हुए दरवाजे की सांकल अभी भी हिल रही थी। वस्तुस्थिति का बोध होते ही मैंने आवाज देनी चाही, पर सूखे हुए होंठों से कुछ नहीं फूटा। मन में आया सांकल खटखटाऊँ, पर वह भी न हो सका। वापस घर लौट आया। आज फिर उसे देखने जा रहा हूँ...

तुलसीबारे पर गाँव के कई लोग इकट्ठे हो आए थे। सीढ़ियों के पास कुछ औरतें भी बड़े-बड़े घूँघट किए आपस में खुसपुसा रही थीं। मुझे देखते ही वे एक तरफ हट गई। मैं जल्दी से सीढ़ियाँ चढ़ गया। देखा, रामकली मंदिर की देहरी पर सिर रखे अस्त-व्यस्त-सी पड़ी थी। होंठों के किनारों से सफेद झाग-सा निकल रहा था। बंद पलकें रह-रहकर सिहर उठती थी।

मेरे आ जाने से पास में खड़े गाँव वाले भी जैसे चुप-से हो गए। गोवर्धन रामकली के पैरों की तरफ चुपचाप खड़ा था। मुझे देखने के लिए उसकी दृष्टि उठी। फिर गिर गई। उसमें कहीं कुछ भी नहीं था। सब एकदम चुपचाप खड़े थे और रामकली सबकी आँखों के सामने दम तोड़ रही थी।

एक कुत्ते का पिल्ला भी यदि इंसान की आँखों के आगे दम तोड़ता है तो उन आँखों में उसकी मौत के दर्द की ठीस उभरती है, पर यहाँ तो इंसानों के बीच एक इंसान दम तोड़ रहा था और सब तमाशाई की तरह चुपचाप उसे मरते देख रहे थे।

अंदर-ही-अंदर उफनते हुए आक्रोश को दबाकर मैंने चारों तरफ एक दृष्टि फेंकी, लगा, जैसे सब चेहरे बस एक ही साजिश में शामिल है। सब चाहते हैं कि रामकली मर जाए। मुँह से भले ही कोई कुछ न कह रहा हो... पर सभी आशंकित और घृणा से सहमे हुए चेहरों पर यही लिखा हुआ था।

पर मेरा अंतर्मन चीख उठा। नहीं, रामकली इस साजिश का शिकार नहीं बनेगी। दृढ़ निश्चय और अनजाने आवेश से मेरा पूरा शरीर ऐंठ आया था। अपने पर भरसक काबू रखते हुए मैं गोवर्धन से बोल पड़ा, ''मुँह क्या देख रहे हो ? जल्दी जाकर... वैद्यजी को बुला लाओ। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, सब ठीक हो जाएगा।''

गोवर्धन जैसे नींद से जागा, ''ठीक है कुंवरजूं, मैं अभी जाता हूँ।'' तभी रामकली ने झीण कराह के साथ आँखें खोली और दृष्टि मिलते ही झाग से सने हुए होंठ थरथराए, ''बबुआ, तुम ?'' टूटते हुए स्वर में अविश्वास और उत्सुकता का मिला-जुला भाग था। मुझे लगा, रामकली बच जाएगी।

''जल्दी जाओ, गोवर्धन !'' मैंने फिर गोवर्धन को झकझोरा, तब तक रामकली की कमजोर आवाज फूटी, ''अब कोई जरूरत नहीं है बबुआ, बस गाही-बगाही की बेला है।'' टूटती हुई आवाज लटपटाने लगी थी, ''बबुआ, मेरे मरद से कह देना मुझे सुहाग की चूनर में लपेटकर दागे, ताकि अगले जनम में सुहागिन ही बनूँ।'' पता नहीं कैसी विकल व्यथा भरी थी रामकली की आवाज में कि मेरी आँखों की कोरे गर्म आँसुओं से तरतरा उठी। गोवर्धन भी जैसे पिघल आया था। ''कैसी बात करती है तू, तुझे कुछ नहीं होगा। अभी हरिया वैद्यजी को लेकर आता है। तू इस जनम में भी सुहागिन कहलाएगी। मैंने तेरी माँग में सिंदूर भरा है, राख नहीं।'' और बच्चों की तरह विहल होकर गोवर्धन ने रामकली के सिर को अपनी गोद में रख लिया और गमछे से उसके मुख का झाग पोंछने लगा। मौत से रिश्ते टूटते ही ज्यादा हैं, पर कभी-कभी मौत टूटे हुए रिश्तों को जोड़ भी जाती है, और ऐसे रिश्ते कभी नहीं टूटते। इंसान चला जाता है पर रिश्तों का अहसास जिंदा रहता है।

एकाएक इन्हीं आत्मीय क्षणों के बीच रामकली ने मेरी तरफ देखा. निमिष मात्र के लिए जैसे सबकुछ सहम-सा गया। भरी-भरी काली आँखों की कोरों में न जाने क्या हुलस-हुलसकर फूटने का छटपटा रहा था। अंतरंग करुणा-जनित व्यथा थी... या आत्म प्रतारणा की मूक हाहाकार...

न जाने क्या था वह... मैं कुछ नहीं समझ पाया, और दूसरे ही क्षण एक क्षीण-सी तरल हँसी पतले सिहरते हुए होंठों पर बिखर गई, मानो कह रही हो- ''मैंने कहा था न बबुआ... मैं मर जाऊँगी पर झुकूँगी नहीं... और...''

और सचमुच रामकली झुकी नहीं, बल्कि जीत गई, गाँववालों ने तुलसीबारे का नाम ही बदल कर, बेड़नीबारा रख दिया। मंदिर के सामने ही एक पक्का चबूतरा बन गया है। मंदिर में जल ढारने के लिए आई हुई गाँव की बहू-बेटियाँ बेड़नी के चबूतरे पर भी जल ढारती हैं, दीप जलाती हैं, और अखंड सुहाग की मनौती और कामना करती हैं। पता नहीं कितनी लाल चूनरों के टुकड़े बँधे हुए हैं पूरी हुई मनौतियों के रूप में।

शायद रामकली की आत्मा भी तर गई होगी।

पर मेरे मन में आज भी वही काली आँखों की हुलस-हुलसकर फूटती हुई छटपटाहट भरी है। जब भी गाँव आता हूँ तो कंचन पोखरे पर सफेद कमलों के बीच किलोल करती हुई बटकुइयों को जरूर देखने जाता हूँ। क्रीं... क्रीं की आकुल करुण पुकार जैसे मेरी छटपटाहट में समाहित हो उठती हैं, और मेरी आँखें सुनहरी बटकुइयों के किसी जोड़े को तलाश करती हैं। शायद अब उसका जोड़ा बन गया होगा...

और लगता है, जब तक मैं इस जोड़े को देख नहीं लूँगा, मेरा मन ऐसे ही अशांत रहेगा... क्यों... ?

बहुत से सवालों का कोई जवाब जो नहीं होता।

– पाठक कालोनी, कृति फर्नीचर्स के बगल में, किल्लाई नाका,
दमोह (म.प्र.) 470661, मो. 8989964897

■

आलेख

हाड़ौती चित्र शैली - एक कलात्मक अभिव्यक्ति

डॉ. मुक्ति पाराशर

सभ्यता, संस्कृति मानव जीवन का ऐसा दर्शन है जिससे हम हमारे अतीत की घटनाओं से रूबरू होकर नए समाज का निर्माण करते हैं। यह वह शब्द है जिनमें जिज्ञासा, विश्वास व आस्था झलकती है। रेनतांग ने कहा है- ''कई लोग कला को केवल मनोरंजन का विषय मानते हैं- एक ऐसी वस्तु जो जीवन से अलग हो।'' किन्तु वास्तव में कला हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। भारतीय कला में आत्मसात करने की अपूर्व क्षमता रही है। भारत में राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जिसके कण-कण में संस्कृति व विभिन्न सभ्यताओं का इतिहास समाहित है। इसी के दक्षिण पूर्व में स्थित हाड़ौती क्षेत्र (कोटा, बूंदी, बारा, झालावाड़ जिले) का अपना विशिष्ट स्थान है। सम्पूर्ण हाड़ौती कला और इसके प्राकृतिक सौन्दर्य से यहाँ की मूर्तिकला व चित्रकला सौन्दर्य से संपूरित है। यह क्षेत्र मेवाड़ मालवा, ढुढाड से घिरा हुआ है। प्रशासनिक दृष्टि से इसमें कोटा, बूंदी, बारा, झालावाड़ जिले आते हैं। पहले यहाँ मीणाओं का राज्य था। 1241 ई. में देवसिंह ने बूंदी राज्य की स्थापना की और 1243 ई. में अपने पुत्र समर सिंह को हाड़ौती का शासक बना दिया।

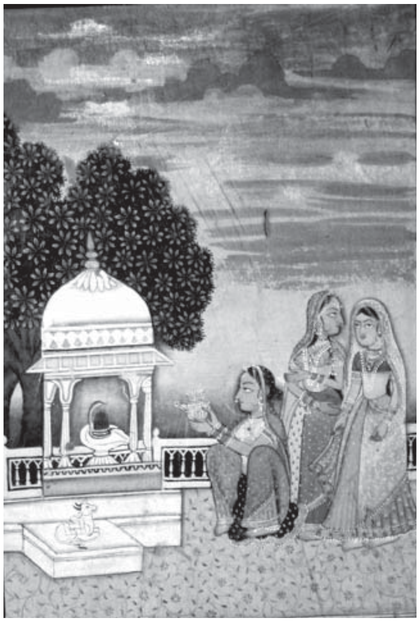

समर सिंह ने कोटिया भील को पराजित कर जैतसिंह को 1247 ई. में कोटा जागीर देकर बूंदी को राजधानी बनाया। कई ऐतिहासिक घटनाक्रम के बाद 1631 ई. में कोटा भी स्वतन्त्र राज्य बना। आगे जाकर कोटा से अलग 1838ई. में झालाओं द्वारा झालावाड़ को अलग राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। आज जाकर बारां को भी कोटा से अलग जिला बना दिया गया। इस तरह हाड़ौती अलग-अलग जिलों में विभक्त हो गया और यहाँ पर बनी भित्ति कला व लघुचित्र शैली में एक-दूसरे का प्रभाव होते हुए भी मौलिकता दिखाई देती है।

बूंदी चित्रशैली-

बूंदी वह शहर है जहाँ के चितेरो द्वारा सृजित कला 'बून्दी कलम' या बूंदी चित्रकला तथा बूंदी स्कूल के नाम से विश्वजनित है। सम्पूर्ण बूंदी चारों तरफ से पहाड़ों से घिरा हुआ होने के कारण सौम्य वातावरण से पूरित है। पहाड़ी पर बना तारागढ़ ऐसा लगता है जैसे सम्पूर्ण नगर पर दृष्टि रखे हुए है। बूंदी चारों तरफ से मेवाड़, मालवा व कोटा द्वारा घिरा होने के कारण यहाँ की चित्रशैली में इन सबका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

बूंदी शैली के उद्‌भव के बारे में अभी तक भी निश्चित तिथियाँ अंकित नहीं हो पायी है किन्तु 19वीं शती के मध्य अपने चरम पर आरूढ़ बूंदी चित्रकला का इतिहास राव सुरजन (1554-85 ई.) से प्रारम्भ माना गया है। इन्होंने रणथम्भोर का किला मुगल सम्राट अकबर को सौंप दिया और बूंदी को छोड़ चुनार की जागीर बसा ली। जहाँ पर 'चुनार रागमाला' चित्रित की गई। राव सुरजन सिंह का पौत्र राव रत्न सिंह (1607-1631 ई.) जहाँगीर में सुरबुलंद राय की उपधि से सम्मानित किये गये और इसी समय से बूंदी कला पर मुगल शैली का प्रभाव छाने लगा। उनके पौत्र शत्रुसाल (1631-58ई.) ने अनेक कलाकारों को आश्रय दिया। राव भावसिंह (1658-81 ई.) की कलाप्रियता ने बूंदी निवासियों को संगीत काव्य और चित्रकला से समृद्ध किया। इसी समय कवि मतिराम ने 'रसराज' तथा 'ललित ललाम' की रचना कर कलाकारों को नये विषय प्रदान किये। भाव सिंह ने मुगलों के साथ दक्षिण के युद्ध किये, इस कारण इस शैली पर दक्खिन शैली का भी प्रभाव आया। राव बुद्धसिंह के समय राव भीम सिंह (1719 ई.) कोटा ने बूंदी को अपने अधिकार में ले लिया। अत: बूंदी शैली पर कोटा शैली का भी प्रभाव पड़ा। 1748ई. में मराठों की मदद से उम्मेद सिंह ने बूंदी को पुन: प्राप्त किया। जिससे यहाँ पर मराठा प्रभाव भी रहा।

10वीं शती में ब्रिटिश प्रभाव बढ़ने लगा व बूंदी राज्य में राव विष्णु सिंह ने रियासत के भारतीय गणतंत्र में विलय होने तक बूंदी का गढ़ व महल हाड़ाओं के अधिकार में ही रहे। बूंदी स्थानीय दृष्टि से गढ़, महलों, बावड़ियों, छतरियों, चित्रशाला आदि से तो सुसज्जित है ही, उसमें बने भित्ति व लघु चित्र भी दर्शनीय है। राग दीपक व रागिनी भैरवी यहाँ के प्रमुख चित्र है। यहाँ महाराव उम्मेद सिंह (1749-73

ई.) के शासन काल में निर्मित चित्रशाला (रंगमंच/रंगविलास) पूर्ण रूप से बूंदी शैली के चित्रों से चित्रित है और चित्र अनुपम सौन्दर्य से युक्त है। इसके अलावा बड़ा महल, बादल महल, सुपारी महल आदि स्थानों पर भी चित्र चित्रित है। रंगशाला में दीवार के नीचे के भाग में कत्थई रंग का अराइश है और उस पर सफेद हाथी-घोड़ों का अंकन बूंदी की निजी विशेषता है। यहाँ पर कृष्ण भक्ति के चित्र व शृंगारिक चित्रों की अधिकता के साथ रागमाला, बारहमासा, नायिका भेद, दरबारी दृश्य, सामंती परिवेश में बड़े-महल, बारहदरी, बाग बगीचे, दरबारी व्यवस्था तथा तीज, होली, दशहरा, गणगौर की सवारी जैसे कई विषयों पर बहुत ही कलात्मक चित्रण हुआ है। रंगशाला अनेक ज्यामिति आकारों के फूल-पत्तियों व शीशों से सुसज्जित है। दरबारी महफिलों में नाच-गान व कई रंगारंग समूह यहाँ चित्रित हैं। यहाँ राव उम्मेदसिंह को श्रीनाथजी की पूजा-अर्चना करते चित्रित किया गया है। यहाँ एक पेनल चित्र में हाथियों घुड़सवारों व पैदल सैनिकों की लम्बी कतार, साथ ही नीले, ईरानी घोड़े पर राव विशमसिंह है तथा सामन्ती परिवेश के अनुसार झंडा, मोरछल, हाथी भिश्ती आदि चित्रित हैं। नायक-नायिकाओं को बहुत सुन्दर बनाया गया है। नायिकाओं को वासकसज्जा, विप्रलब्धा, अभिसारिका आदि रूपों में चित्रित किया गया है। नायिकाओं को कहीं हाथ में कमलनाल, कहीं मोरछल लिये, कहीं पतंग उड़ाते हुए, कबूतर से खेलते, सुरापान करते, कहीं प्रियतम का इन्तजार करते बनाया गया है। आमोद-प्रमोद, पशुओं की लड़ाई व शिकारचित्र दर्शनीय है। छत्र महल के इजारों में सम्पूर्ण रागमाला चित्रित है। इनमें सोने का प्रयोग प्रचुरमात्रा में देखा जा सकता है। इनमें पर्शियन पगड़ी, जामा व भवन, काल निर्धारण में सहायक है। पशु-पक्षी वृक्ष दर्शनीय है। प्रकृति चित्रण में स्थानीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। चित्रों में सुघड़ रेखांकन, पिश्तई जमीन पर अनेक रंगों से

नायिका

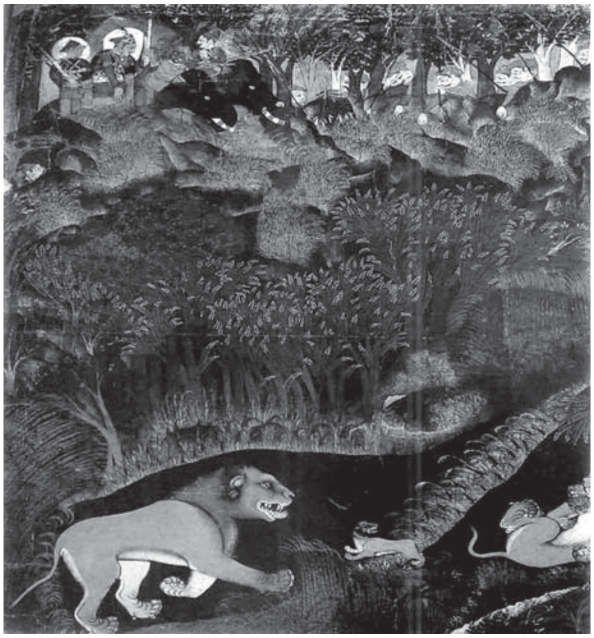

राजपूती वेशभूषा में मुगल शैली का प्रभाव है। चित्रों में हरे-भरे परिवेश में, रंग-बिरंगे फूल, घने वृक्ष, मोर सारस, बगुले, कमल पुष्प से भरे सरोवर को चित्रित किया गया है। रसिक प्रिया, कविप्रिया, बिहारी सतसई, रसराज जैसे ग्रन्थ यहाँ के चितेरों को विशेष प्रिय थे।

अंग प्रत्यंगों व रंगौ में मेवाड़ शैली के प्रभाव के बावजूद यहाँ के चित्र अपनी मौलिकता लिये हुए है। मानवाकृतियों में स्त्रियों के अधर अरुण, नासिका, साधारण छोटी, कद भी छोटा, मुख गोल व चिबुक पीछे की ओर झुकी व छोटी ग्रीवा, वक्ष आगे निकला हुआ, कटि क्षीण तथा स्फूर्तिदायक भाव-भंगिमा युक्त हैं। चेहरों का रंग कुछ लाल (गुलाबी), कहीं-कहीं छाया-प्रकाश का भी बनाया गया है। अग्र भूमि में पुष्पो की पंक्ति तथा चंद्रकारक युक्त रात्रि आकाश की योजना बूंदी में दक्षिणा अनुकरण पर हुई है। आकाशीय परिप्रेक्ष्य (बहुबिन्दु) का प्रयोग तथा आकाश में लाल रंग की पतली पट्टी बनाई गई है। सुव्यवस्थित स्थापत्य बना हुआ है। रंगों में श्वेत गुलाबी, सुनहरी तथा लाल गहरे रंग को प्रमुखता दी गई है। वृक्षों में खजूर व आम ज्यादा बने हैं। यहाँ हाथियों का चित्रण बहुत सुन्दर व लयात्मक है। भवानी सिंह की हवेली, थाने की दीवार, दुगारी के चित्र, उनियारा के चित्र जो बूंदी व जयपुर शैली मेल में है तथा इनके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित चित्र भी बूंदी शैली में बनाए गये हैं। इस प्रकार विभिन्न अवस्थाओं को समेटे बूंदी शैली अपने अस्तित्व के लिए प्रयत्नशील मौन खड़ी है।

कोटा शैली-

जो संस्कृति जितनी उदात्त होती है, उसकी कला में उतना ही सूक्ष्म सौन्दर्य साकार होता है। प्रकृति की विशेष शोभा, पहाड़, चट्टानें, पर्वत, नदियाँ, घास, पौधे व विभिन्न वृक्षों के रूप में यहाँ

उपलब्ध है और इसी रूप ने यहाँ के राजाओं को भी मोहित किया है और उसी मोह का अक्षुण्ण रूप यहाँ की चित्रशैली में दिखाई देता है। राजस्थान के पश्चिमी भाग हाड़ौती के दक्षिणी-पूर्वी सीमा में कोटा जिला स्थित है। 12 महीने बहने वाली चम्बल नदी व प्राकृतिक जल स्रोत के कारण इस क्षेत्र के दक्षिणी भाग में सघन एवं विशाल वन हैं। कई ऐतिहासिक घटनाओं के बाद 1624 ई. तक बूंदी के रावरतन के राजकुमार राव माधोसिंह की वीरता, कूटनीति एवं सेवा के कारण कोटा को अलग राज्य का दर्जा, प्राप्त हुआ और 1631 ई. में राव माधोसिंह (1624-49 ई.) स्वतंत्र कोटा के प्रथम शासक बने। यहीं से कोटा की चित्रकला का इतिहास शुरू होता है। राव माधोसिंह ने कोटा का काफी विस्तार किया और साथ में सांस्कृतिक, सामाजिक व धार्मिक जीवन एवं कलाओं को भी संरक्षण दिया। बूंदी के समान ही यह क्षेत्र भी भित्तिचित्रों व लघुचित्रों से भरपूर है। इनके समय में अनेक महलों, दरवाजों, किलों तथा बुर्जों का निर्माण, जिनमें कोटा गढ़ स्थित बड़ा महल, राजमहल, बोलसरीकी ड्योढ़ी नक्कारखाने का सौलारगाजी का दरवाजा, शहर पनाह (कैथूनीपोल) पाटनपोल, किशोरपुरा, के दरवाजे के कोट (चार दिवारी) का निर्माण करवाया। वे सभी इमारतें, किले एवं बुर्ज वास्तुकला की दृष्टि से हिन्दु स्थापत्य पर आधारित है। कोटा शैली का प्रारम्भ बूंदी व चुनार चित्रमाला को आदर्श मानकर हुआ। इनके समय में स्थानीय, बून्दी व दक्खिन के चितेरों को आश्रय प्राप्त हुआ। इस समय की चित्रकारी में अनेक प्रयुक्त तकनीकी कौशल की दक्षता के कारण वह कोटा मास्टर, एलिफेन्ट मास्टर तथा मास्टर ऑफ जनाना आदि उपनामों को सम्बोधित हुए। इस समय बेल बूंटों के सुन्दर अलंकरण छतों के मध्य सूर्य, परियों, दरबारियों आदि के चित्र बने। इनके बाद राव जगतसिंह (1658-84 ई.) के समय मुगलिया व मेवाड़ का प्रभाव दिखाई देता है। इस समय की नारियों व प्रकृति का सौन्दर्य अद्वितीय है। चित्रों को बनाने में तुर्की, झंडों व ईरान आदि में प्रचलित चरन (ट्रेसिंग) का प्रयोग किया गया। राव रामसिंह (1696-1707 ई.) के समय में कोटा कलम में कुछ नवीन व मौलिक विशेषताएँ आई। इसके बाद महाराव भीमसिंह प्रथम (1707-1720 ई.) में कोटा शैली पर वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा और ब्रजनाथ जी का इस समय कोटा का नाम 'नन्दग्राम' पड़ा इसके बाद महाराज राव दुर्जनसाल (1724-1747 ई.) ने कृष्ण भक्ति परम्परा का सम्मान के साथ निर्वाह किया। इनके समय से भगवान मथुरेश जी की स्थापना के बाद यह वल्लभ सम्प्रदाय की प्रथम पीठ बना। इसके बाद महाराव शत्रुसाल (1746-1766ई.) का नाम उल्लेखनीय है। इनके समय में जालिम सिंह झाला कोटा दरबार से जुड़े जिन्होंने अपनी सूझबूझ, चतुराई व वीरता से कोटा को समृद्धशाली बनाया। भागवत का लघु सचित्र ग्रन्थ इसी समय चित्रित हुआ। कन्हैया ब्राह्मण द्वारा लिखित एवं 476छोटे-बड़े चित्रों से सुसज्जित यह ग्रन्थ कोटा कलम की अनुपम झाँकी है। इसी समय ढोलामारू काफी चित्रित हुआ। इसके बाद महाराव गुमानसिंह (1766-1770 ई.) में रागरागिनियों के बहुत चित्र बने। कोटा के शिकार चित्रों के स्वर्णिम काल जिसमें इस शैली को विश्व प्रसिद्ध बनाया महाराव उम्मेद सिंह प्रथम (1771-1820 ई.) के समय चित्रित हुए। महाराव रामसिंह (1828ई.) के समय की यह शैली निखार पर थी। महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय (1889-1940 ई.) के शासनकाल में तो यह शैली अपनी संध्या की तरफ बढ़ती चली गई।

कोटा शैली के शासकों को शिकार व हाथी की सवारी प्रिय थी। इसका असर यहाँ के चित्रों में भी चरम पर देखा जा सकता है। सघन वनों को पूर्ण बारीकी व कलात्मक सौन्दर्य से बनाया है। सुबह-शाम, रात, विभिन्न वनस्पतियों, लताएँ, पक्षी, मोर, सारस, बगुले, बंदर, विभिन्न प्रकार के फूलों के वृक्ष, कमल से भरपूर तालाब आदि की भरमार है। यही कारण है कि जमीन के विविध रंग और इधर-उधर पड़े छोटे पत्थर, बहता जल, और अनेक भंवर केवल बूंदी व कोटा के चित्रकार ही देख सके। काल्पनिक वृक्षों का चित्रण तो है किन्तु कई चित्रों में हुबहू जंगल व शिकार के स्थान (अलनिया, रावतभाटा) व वनस्पतियों जैसे सरो, बहेड़ा, पलाश, पीपल, कदम्ब, आम, खजूर, को बनाया गया है। कोटा के शिकार चित्रों में कटे पेड़ों के ठूँठों से निकलती शाखाएँ अन्य कहीं दिखाई नहीं देती। कोटा शैली के चित्रों में बूंदी, मेवाड़, दक्खिनी व पाश्चात्य प्रभाव भी है। लाल, पीले, नीले, हरे रंगों का प्रयोग। किन्तु खजूर वृक्ष व नीला रंग एक अलग प्रखरता लिये गुलाबी भूरे रंग का समन्वय है। कई जगह तो क्षितिज न बनाकर, सम्पूर्ण भाग में जंगल बनाया है, जिसमें साथ तलवारों व बन्दूकों से शिकार करते दिखाया है जो यहाँ की मौलिकता है। नारी व पुरुष आकृति, सुन्दर व हष्ट-पुष्ट व सामान्य आकार की बनाई है जो वल्लभ सम्प्रदाय के कारण है। यहाँ रागरागिनियों, बारहमासा, नायिका भेद, राजदरबारी दृश्य, होली-दीवाली, गणगौर व विशेष कर बृजनाथ जी, मथुरेश जी, व कृष्ण के जीवन के असंख्य चित्र बने हैं। यहाँ भक्ति, वीर व श्रृंगार चित्रों की अधिकता है। चित्रों को मल्टी व्यू पॉइण्ट से बनाया गया है। डालू, जोशी, शेख आदि प्रसिद्ध चित्रकार हैं। यहाँ पर गढ़, माधोसिंह ट्रस्ट म्यूजियम, राजकीय संग्रहालय, देवता जी की हवेली आदि पर भित्ति चित्र व लघु चित्र देख सकते हैं। झाला जालिम सिंह हवेली के चित्र इतने सुन्दर थे कि उनका कोई सानी नहीं है। नायिकाओं का बहुत कलात्मक व लयात्मक चित्रण किया गया है। अत: कोटा शैली अलंकरणात्मक, कलात्मकता को पूर्ण करती है।

झालावाड़ शैली :-

सघन वनों, नदियों दुर्गों से आच्छादित स्थल जिसे 1791 ई. में एक सैनिक छावनी मात्र रूप में कोटा के संनापति झाला जालिम सिंह (प्रथम) द्वारा की गई थी। 18वीं सदी में झाला जालिम सिंह अपने अंग्रेज मित्रों के साथ यहाँ शिकार खेलने आते थे। इससे यह प्रमाण मिलते हैं कि यहाँ वन्य जीवों का बाहुल्य था। सन् 1838ई. में

झालावाड़ का कोटा से अलग राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ और झाला के पौत्र झाला मदन सिंह यहाँ के प्रथम महाराजा राणा बने। हाडौती स्कूल में बूंदी, कोटा के बाद झालावाड़ की चित्रकारी का स्थान है। हालांकि इसके चित्रों पर बूंदी-कोटा शैली का मालवा का प्रभाव है, किन्तु फिर भी भित्ति चित्रों एवं लघुचित्रों में कहीं-कहीं विशिष्टताएँ दृष्टिगोचर होती है। कोटा राज्य की राजनीति में झाला जालिम सिंह ने हस्तक्षेप रखा साथ ही कोटा राज्य को शक्तिशाली एवं समृद्धशाली बनाया।

झालावाड़ प्राचीन काल से ही स्थापना व कला की तपोभूमि रहा है। राजस्थान में सबसे पहला मंदिर सन् 686ई. में शीतलेश्वर महादेव का यहीं प्राप्त होता है। यहाँ के शासक भवानी सिंह ने अन्य कला के साथ चित्रकला को भी संरक्षण दिया। यहाँ के चित्रों की परम्परा को हम गढ़ भंवर-पुरा संग्रहालय, कोठी विलास, श्रीनाथ जी की हवेली तथा व्यापारिक फर्म सेठ विनोदीराम बालचन्द की हवेली में देख सकते हैं। झालावाड़ के गढ़ पैलेस में विशेष रूप से कँवरपदा महल व पूर्व पुलिस अधीक्षक कार्यलय के कक्षों के भित्ति चित्र बनाये हुए हैं। यहाँ पर विभिन्न विषयों में मुख्य रूप से व्यक्ति चित्र प्रमुख है। यहाँ पर झालावाड़ ही नहीं वरन् जयपुर जोधपुर शासकों के भी चित्र बने हैं। इन चित्रों को उस समय की वेशभूषा व अलंकरणों को बारीकी के साथ बनाया गया है। यहाँ की बड़ी विशेषता यह है कि इनमें राजपूताना व उससे जुड़े विभिन्न राज्यों में पहनने वाली पगड़ियों को बहुत ही कलात्मक तरीके से अंकित किया गया है। इनमें यह स्पष्ट है कि यहाँ के चितेरे पहाड़ी कलम व मालवा से भी प्रभावित थे। यहाँ पर बने आदमकद व आवक्ष व्यक्ति चित्र काँच पर जड़े हुए हैं। पुलिस कार्यालय में अलवर के महाराजा जयसिंह का चित्र कथन का साक्षी है। एक कमरे में झालावाड़ के राजाओं का सामंती रूप बहुत ही करीने से अंकित है। कक्षों की छतें पूर्ण रूप से ज्यामिति अलंकारों व बेलबूश्टों से सुसज्जित है। छत पर शीशों की जड़ाई का कार्य अत्यधिक लुभावना और सतरंगा है। एक जगह राम-दरबार का बहुत ही कलात्मक व भावपूर्ण चित्र अंकित है। एक चित्र झालावाड़ के शाही इन्द्र विमान की सवारी का है। इसमें शाही इन्द्र विमान को दो विशाल हाथी खींच रहे हैं जिनके आगे-पीछे, अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित फौज पलटन, वैभवशाली हवेलियाँ, पथ, बंजारों आदि का सुन्दर अंकन है। इन चित्रों में स्वर्ण रंगों का भी प्रयोग किया गया है। इनके अलावा वृथु अवतार, रिषभ अवतार, गजयुद्ध, जुलूस का चित्रण है। श्रीनाथ जी का भी विभिन्न मुद्राओं, रूपों, वेशभूषाओं में अंकन किया गया है। झालरापाटन के द्वारकाधीश भगवान व नवनीत प्रियाजी को पूर्ण शृंगार में उकेरा गया है। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का भी मनोहारी व भक्तिपूर्ण चित्रण वहाँ की शैली में किया गया है। गीत गोविन्द, महारास, शिवपूजा, राम-सीता जीवन पर, आखेट पर भी चित्रण हुआ है। प्रकृति को चित्रों में हरा-भरा बनाया गया है। चटकीले रंगों का प्रयोग किया गया है। कई जगह भित्ति चित्रों में पृष्ठ भूमि सपाट गहरे हरे रंग की बनाई गई है सफेद, केसरिया, पीला व लाल रंग की अधिकता है। अंगूर की बेल का अंकन अद्वितीय हैं बूंदी कोटा के अलावा मुगल प्रभाव भी इन चित्रों में स्पष्ट देखा जा सकता है। नायिकाओं व नर्तकियों के चित्रण में ये न तो बूंदी और न ही मेवाड़ और न ही जयपुर जैसा है। इन्हें सुगठित देह वाली व अत्यन्त आकर्षक वस्त्रों से कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है। झालावाड़ की कला के कुछ चित्र व जानकारी निजी संग्रह (श्री ललित शर्मा) से बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। जिनकी शोध रूप में सहायता ली जा सकती है। श्रीनाथ जी की भिन्न भंगिमाओं का चित्रण नाथद्वारा शैली में किया गया है। ये चित्र यथार्थ रूप से टेम्परा पद्धति से बनाए गए हैं। यहाँ के प्राकृतिक व शिकार चित्रों में प्रकृति को चितरों ने कोटा शैली की भांति रूबरू देखकर बनाए हैं। झालावाड़ के गागरोन दुर्ग कोटा शैली का भी सुन्दर अंकन है। कला समीक्षकों का मानना है कि झालावाड़ शैली में बने चित्रों में इसकी यूरोपीयन (तेल विधि) के बाद के चित्रों में कम्पनी तेलों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कई ग्रन्थों, हस्तलिखित में श्रीमद् भागवत, अवतार चरित्र, बारहमासा ग्रंथों में बने चित्र भी बहुत सुन्दर हैं। अत: विभिन्न समानताओं व विषमताओं को लिये यह शैली अभी भी शोध का विषय है।

अत: कोटा-बूंदी व झालावाड़ हाडौती की चित्र शैलियों के चित्रों में शौर्य, उत्साह, पौरुष, प्रकृति उत्सव व शृंगारिता की अनुपम अभिव्यक्ति है। इन चित्रों का प्राय: आलागीला (फ्रेस्को) पद्धति से भित्ति पर तथा लघु चित्रों को कागज व वसली पर बनाया गया है।

इन तीजों (कोटा, बून्दी झालावाड़) की प्राचीन कला हमें हमारी प्राचीन संस्कृति वे सभ्यता का दृश्य रूप में ज्ञान कराती है।

- 164, आर्य समाज रोड, रामपुरा, कोटा राजस्थान

■

आलेख

कला और संस्कृति पत्रकारिता में कवरेज की गुणवत्ता

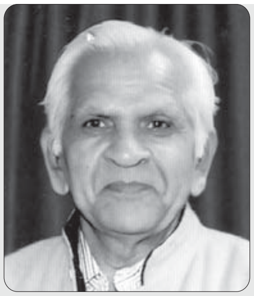

युगेश शर्मा

पहले तो सामान्य पत्रकारिता एवं कला और संस्कृति पत्रकारिता में जो बुनियादी फर्क है, उसको ठीक से समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है। इस फर्क को समझने के लिए सामान्य पत्रकारिता तथा कला और संस्कृति पत्रकारिता को समरूप समझ लेने के भ्रम से मुक्ति पाना आवश्यक है। सामान्य पत्रकारिता में पत्रकार जो देखता-सुनता है- उसको लिपिबद्ध कर देता है। उसको इस प्रकार की पत्रकारिता में किन्हीं विशेष दक्षताओं का निवेश करने की जरूरत नहीं पड़ती। केवल तथ्यों को यथोचित रूप में शामिल करते हुए बस समाचार, फीचर और रिपोर्ताज का लेखन करना होता है। इस प्रकार की पत्रकारिता में किन्हीं खास विषयों के विशेष ज्ञान अथवा विशेषज्ञता का आग्रह नहीं रहता। दूसरी तरफ जब इस परिप्रेक्ष्य में कला और संस्कृति पत्रकारिता की बात करते हैं, तो स्थिति सर्वथा भिन्न रूप में उभर कर आती है। सांस्कृतिक पत्रकार को किसी कला और संस्कृति के कार्यक्रम की रिपोर्टिंग अथवा इन क्षेत्रों से संबंधित मनीषियों के साक्षात्कार लेने के लिए पर्याप्त पूर्व तैयारी करना भी बहुत आवश्यक है। इस पूर्व तैयारी में संबंधित कला विधा की शास्त्रीय बारीकियों को प्राप्त करना और तत्संबंधी संदर्भ सामग्री का सम्यक् अध्ययन भी जरूरी होता है।

इस पृष्ठभूमि में यह माना जा सकता है कि सामान्य पत्रकार और सांस्कृतिक पत्रकार के दायित्वों में आधारभूत भिन्नता तो रहती ही है। यह भिन्नता सांस्कृतिक पत्रकार के काम को अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण और थोड़ा सा कठिन तो बना ही देती है। इसी प्रसंग में एक और बात का जिक्र भी आवश्यक है। वह यह कि सांस्कृतिक-पत्रकारिता में 'रुटीन अप्रोच' अर्थात् काम चलाऊ तौर-तरीके से काम नहीं चलता। उसमें हर कवरेज के लिए गंभीरता के साथ-साथ पर्याप्त अग्रिम तैयारी भी अपरिहार्य मानी जाती है। सामान्य पत्रकारिता के लिए कलम और कागज के अलावा तत्संबंधी व्यावहारिक अनुभव और शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता भी रहती है।

कला और संस्कृति पत्रकारिता को लेकर यह मान लेना उचित नहीं है कि पत्रकारिता की यह कोई नई विधा है। जब से विभिन्न प्रकार के कला और संस्कृति के आयोजन बड़ी संख्या में शुरू हुए हैं, किसी न किसी रूप में पत्र-पत्रिकाओं और अन्य प्रकार के माध्यमों में इनका कवरेज कमोबेश होता ही रहा है। हाँ, अब से 40-50 वर्ष पूर्व तक इस कवरेज का रूप आजकल जैसा परिष्कृत और शास्त्रीय ज्ञान से समृद्ध नहीं था। यह भी सच है कि तब पत्र-पत्रिकाओं में इस कवरेज के प्रति आज जितना आग्रह भी नहीं था। लोकमान्य तिलक ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जब गणेशोत्सव को राष्ट्रीय जनजागरण से जोड़ा तथा कला और संस्कृति के विविध आयामों के कार्यक्रमों की प्रस्तुतियों का सिलसिला प्रारंभ हुआ, तो धीरे-धीरे इस प्रकार के कार्यक्रमों के प्रति बढ़ती जनरुचि को देखते हुए कवरेज में बढ़ोत्तरी हुई। 21 वीं सदी में कला और संस्कृति पत्रकारिता का जो व्यापक और बहुआयामी स्वरूप देखने को मिल रहा है, वह इसी क्रमिक प्रगति का प्रतिफलन ही है।

कला और संस्कृति के कवरेज की गुणवत्ता के बारे में साधिकार कुछ कहने का मैं इस आधार पर अधिकारी हूँ कि मैं छात्र जीवन से पत्रकारिता के क्षेत्र में हूँ और इंदौर में पत्रकारिता की यात्रा कला और संस्कृति संबंधी कवरेज से ही शुरु की थी। बाद में सत्तर के दशक में भोपाल आया, तो अपने मूल कर्म-क्षेत्र के दायित्वों को निभाते हुए मैंने इस क्षेत्र में पत्रकारिता का अपना उपक्रम भी जारी रखा। कालान्तर में सांस्कृतिक पत्रकार श्री विनय उपाध्याय के संपर्क में आया। तब वे 'नई दुनिया' में कला और संस्कृति के कार्यक्रमों का कवरेज कर रहे थे। उन्होंने तब इस क्षेत्र में कई अनुकरणीय मानक स्थापित किये थे। वे गहरे डूब कर तत्संबंधी ज्ञान और दक्षता का निवेश करते हुए रिपोर्टिंग किया करते हैं। उनकी भाषा की सरलता और सरसता एवं कला-संस्कृति संबंधी गहरे ज्ञान की सामर्थ्य पाठकों को मोहित करती रही है। पिछले दो दशक के काल खंड में कला और संस्कृति के क्षेत्र में पत्रकारों की मेहनती पीढ़ी उभरी और उसके योगदान से दैनिक अखबारों में इन विषयों का कवरेज बढ़ा है। माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय के नवोदित पत्रकारों की भागीदारी ने इन विषयों के कवरेज को व्यापकता प्रदान की। मैं कह सकता हूँ कि अब प्रमुख अखबारों में कला और संस्कृति का कवरेज एक नियमित आवश्यकता बन चुका है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि कवरेज की गुणवत्ता का आग्रह सामान्य पत्रकारिता में अधिक नहीं रहता। उसमें पाठक प्राय: घटना के तथ्य और भाषणों की मुख्य बातों पर ही ध्यान देते हैं। भाषा और तत्संबंधी शास्त्रीय और सांदर्भिक जानकारी के निवेश की वैसी अपेक्षा उसमें नहीं रहती, जैसी कला और संस्कृति पत्रकारिता में रहती है। जब ऐसी पत्रकारिता में इन बातों का अभाव रहता है, तो कवरेज कभी-कभी अपूर्ण और हास्यास्पद हो जाता है। वीणा की जगह सितार

और गायन की बंदिशों के नाम गलत लिख देने से सारा कवरेज बेकार हो जाता है। जिन पत्रकारों का साहित्य में दखल नहीं होता, वे साहित्यिक कार्यक्रमों की रिपोर्टिंग में नामी साहित्यकारों और उनकी कृतियों के नाम भी गलत लिख देते हैं। महान कवयित्री महादेवी वर्मा पर केन्द्रित कार्यक्रम के समय एक रिपोर्टर ने जब मुझसे पूछा कि यह महादेवी वर्मा कौन थीं, तो मैं उसका प्रश्न सुनकर अवाक रह गया था। इस श्रेणी के समाचारों में आयोजक संस्था के अध्यक्ष और मुख्य अतिथि के बारे में यह लिखा जाना कि वे भी कार्यक्रम में उपस्थित थे, हास्यास्पद तो लगता ही है। इन तथ्यों के प्रकाश में अपने अनुभवों के आधार पर कवरेज की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के संबंध में चंद बातों का उल्लेख करना चाहूँगा।

1. पत्रकार कवरेज वाले कार्यक्रमों की प्रतिदिन की एक तालिका अग्रिम रूप से बना लें और फिर उससे संबंधित सूचनात्मक और तकनीकी संदर्भों को ठीक से देख-पढ़ लें। यदि किसी गायक की प्रस्तुति की रिपोर्टिंग की जाना हो, तो गायक के बारे में मोटी-मोटी जानकारी अवश्य प्राप्त करना चाहिए। साहित्यकार के बारे में भी ऐसा ही करना उपयोगी होगा। इससे कवरेज को पूर्णता मिलेगी।
2. कला और संस्कृति की प्रस्तुति से जुड़े कार्यक्रमों में जो प्रमुख वाद्ययंत्र प्रयोग में लाये जाते हैं, उनके बारे में जानकारी भी रिपोर्टर को होना चाहिए। इस तरह की रिपोर्टिंग में विसंगति से बचा जा सकेगा। इसी संदर्भ में लोक वाद्यों-मांदल, टिमकी आदि की पहचान भी होना जरूरी है।
3. कला और संस्कृति संबंधी प्रस्तुतियों की परिचायत्मक जानकारी अग्रिम रूप से प्राप्त करना, गुणवत्तात्मक कवरेज में मददगार साबित होगी। यदि प्रस्तुति से पूर्व, ख्यातिनाम गायक/वादक/वक्ता के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली जाय, तो उससे समाचार अच्छा सारगर्भित बन सकेगा। गायक के घराने और उसके उस्ताद का उल्लेख प्रस्तुति के संदर्भ में अवश्य किया जाना चाहिए।
4. कार्यक्रमों के कवरेज में सहज-सरल और विधा सम्मत भाषा का प्रयोग होना चाहिए। समाचार/फीचर को अंग्रेजी भाषा के शब्दों की भरमार से बचाया जाना बहुत आवश्यक है। ऐसा अनुचित प्रयोग प्रस्तुति की शास्त्रीय पवित्रता को नष्ट करने का कारण बनता है।
5. महानगरों में कला और संस्कृति के कार्यक्रमों की अधिकता और एक ही समय पर एकाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित होने पर पत्रकार को बड़ी कठिनाई से गुजरना पड़ता है। भागदौड़ में कवरेज की गुणवत्ता पीछे छूट जाती है। कवरेज भी होना है और अच्छा भी होना है, यह चुनौती पत्रकार के सामने रहती है। इस चुनौती से निपटने के लिए संस्थाओं के किसी एक सुविज्ञ पदाधिकारी अथवा सदस्य को कार्यक्रम की जानकारी उपलब्ध कराने का माध्यम बनाना उपयोगी होगा। ऐसे सूत्रधार को पहले से सूचित कर दिया जाना चाहिए कि पत्रकार उससे कार्यक्रम के बारे में फीडबैक कब प्राप्त करेगा।
6. निमंत्रण पत्र के आधार पर टेबिल न्यूज बनाने से यथा संभव बचना चाहिए, क्योंकि ऐसा कवरेज कभी-कभी भ्रामक/ गलत होने से पत्रकार को आलोचना का कारण बना देता है। वजह यह कि वह अपने समाचार में ऐसी प्रस्तुति का उल्लेख भी कर देता है, जो निरस्त हो गई थीं। ऐसे दोषपूर्ण/आधे अधूरे कवरेज से उसके और समाचार की विश्वसनीयता पर आँच आती है, जो उचित नहीं है।
7. रिपोर्टिंग चाहे सांस्कृतिक कार्यक्रमों की या अन्य की, पत्रकार को उसमें शाब्दिक पांडित्य प्रदर्शन से बचने की भरपूर कोशिश करना चाहिए। समाचार और फीचर में भाषा और शैली जितनी सहज और सरल होगी, कवरेज उतना ही ग्राह्य, रोचक और सरस होगा। पत्रकार अपनी खुद की भाषा गढ़ सके, तो सोने में सुहागा।
8. पत्रकार की मूल प्रवृत्ति काम में सतत रूप से गुणात्मक सुधार ही होना चाहिए। वह कभी यह नहीं मान बैठे कि वह परिपक्वता के शिखर पर पहुँच चुका है और अब उसको काम में गुणात्मक सुधार लाने की जरूरत नहीं है। जो जितना अधिक सीखेगा, उतना ही परिपक्व बनेगा तथा नवोदित पत्रकारों को काम में गुणात्मक सुधार के साथ-साथ अपने वरिष्ठ साथियों के साथ जीवंत संवाद भी बनाये रखना चाहिए। यह संवाद उन्हें कला और संस्कृति पत्रकारिता में कुशल बनाने के साथ-साथ अपेक्षित ऊँचाइयों तक पहुँचने में मददगार भी बनेगा।

कवरेज की गुणवत्ता के संबंध में वैसे तो बहुत सारी बातें हैं, लेकिन मैंने उनमें से कुछ को ही स्पर्श करने का प्रयास किया है। मुझे उम्मीद है, साथी पत्रकार मेरी इन बातों से अवश्य लाभान्वित होंगे।

- व्यंकटेश कीर्ति, 11, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन,
चूना भट्टी, भोपाल-462 016

■

पुस्तक समीक्षा

असाधारण, विलक्षण एवं सत्य तथ्यों पर आधारित लोक का विज्ञान

डॉ. मीना साकल्ले

श्री वसंत निरगुणे जी की पुस्तक 'जीवन में लोक विज्ञान' 'लोक और विज्ञान' से जुड़े आठ लेखों का संग्रह है। हर अध्याय के शीर्षकानुसार विषयवस्तु को बड़े ही सुचारू एवं सरल शब्दों में विश्लेषित किया है।

पहला अध्याय है लोक और जीवन। जिसमें लेखक ने लोक यानी संसार, जीवन और विज्ञान को बड़े ही सरल रूप में परिभाषित किया है। लोक को विश्लेषित करते हैं तो उसमें विज्ञान दिखता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और इन्हीं से जीवन बनता है, जिसका नाम अनुभव है। जिसका जन्म जीवन से होता है और अंत भी जीवन में ही हो जाता है। जनसमूह के व्यावहारिक ज्ञान और प्रकृति का सहयोग लोक विज्ञान रचने में सहायक होती है। इन तथ्यों में लेखक ने जनजातीय जगत और लोक समाज दोनों को रखा है। यहाँ सबसे बड़ी बात लेखक ने कही है ''विज्ञान में आत्मा का अभाव रहता है, जबकि लोक विज्ञान सदैव चैतन्य और सजीव होता है उसमें संवेदनशील आत्मतत्व भी शामिल है''- (पृष्ठ 10) जीवन के सुख दु:ख दोनों ही क्षणों में लोक विज्ञान के प्रदर्शन होते हैं। इसके लिए लेखक ने बड़ा ही सहज एवं प्रचलित उदाहरण भी दिया है-

''सगा (गुरु) कीजे जान के
पानी पीजे छान के''।

विभिन्न उदाहरणों द्वारा लेखक ने जीवन मे विज्ञान और लोक विज्ञान को परिभषित किया है। विज्ञान में जिसे जैविकी और भौतिकी नाम दिया है, वही लोक विज्ञान में इसे संस्कृति से परिभाषित किया गया है। जीवन में लोक विज्ञान की व्यापक पृष्ठभूमि है जो प्राणी के जन्म से मृत्यु तक जुड़ा है। लेखक ने यह भी जताया है कि जीवन को संवारने के लिए उसने जो सोलह संस्कार, प्रथाएँ, परंपराएँ, रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, धर्म, सभ्यता, जाति, भाषा, अनुष्ठान, पर्व-त्यौहार, ऋतुएँ, मौसम, दिन-रात, गृह-नक्षत्र, पूरी प्रकृति और सृष्टि रची है वह सब लोक विज्ञान है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए लेखक ने विद्वानों के संदर्भित उद्धरण भी पुस्तक में दिए हैं।

दूसरा अध्याय है 'विज्ञान और लोक विज्ञान', जिसमें विज्ञान की परिभाषा के साथ विज्ञान के अन्तर्गत सभी प्रकार के ज्ञान को रखा गया है। यह ज्ञान मनुष्य जाति की सभ्यता से प्रभावित है, जिसके फायदे भी हैं और नुकसान भी। लेखक ने इस बात को विश्लेषित करने के लिए पौराणिक आख्यान का भी वर्णन किया है (पृष्ठ 16पर)। कुछ भारतीय वैज्ञानिकों को उदाहरण रूप में रखकर लेखक ने बताया है कि उन्होंने विज्ञान को जिया है। उनके अनुसार विचित्र ज्ञान का जान लेना या जी लेना ही असली विज्ञान है। जीवन का हर क्षेत्र विज्ञान से जुड़ा है।

इसी अध्याय में लेखक ने विज्ञान और लोक विज्ञान, तथा लोक और संस्कृति में भी अंतर दर्शाया है। उनके अनुसार ''विज्ञान आधुनिक है और लोक विज्ञान परंपरागत (पृष्ठ 17)। भारत में विज्ञान के तीन रूपों को भी विभाजित किया है 1. वैदिक विज्ञान, 2. सनातन विज्ञान, 3. लोक विज्ञान। लोक और संस्कृति को लेखक ने समाज का लोक विज्ञान नाम दिया है, जिसके अन्तर्गत अठ्ठारह प्रमुख तत्व रखे हैं। इसका उद्‌देश्य है... लोक विज्ञान का मकसद अच्छे आदमी से आगे एक सुलझे हुए व्यक्ति को बनाने की कोशिश करना है। उसे अज्ञान से अंधकार, अंध विश्वास के कूप से रूढ़ियों की जकड़न से निकालने की कोशिश करना है'' (पृष्ठ 28)।

तीसरा अध्याय है 'जीवन में लोक विज्ञान की उपस्थिति'। प्रकृति अर्थात् पंचतत्व। पंचतत्वों के बिना जीवन संभव ही नहीं है। यह सत्य है कि अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल और वायु में से एक भी तत्व के न रहने पर जीवन ही समाप्त हो जाएगा। जीवन इन्हीं तत्वों से बना है और जीवन का ही एक नाम है, लोक इस तथ्य को समझाने के लिए विभिन्न विद्वानों की पुस्तकों के उदाहरण भी दिए गए हैं। साथ ही निमाड़ी एवं लोक भाषा बोलियों के ज्ञाता होने के कारण प्रचुर मात्रा में इनके उदाहरण अपनी बात को समझाने के लिए दिए हैं, क्योंकि बोली एवं लोकभाषाओं से ही एक परिनिष्ठ भाषा की रचना हुई। इन उदाहरणों से लेखक ने यह सत्यापित किया है कि लोकजीवन में विज्ञान कैसे निर्दिष्ट हुआ है।''जीवन के साथ लोक विज्ञान है। पृथ्वी पर जब तक जीवन रहेग तब तक लोक विज्ञान भी रहेगा। विज्ञान जीवन से ही उपजता है और जीवन में ही समा जाता है'' (पृष्ठ 33)। लेखक ने यह माना है ''लोक वाचिक परंपरा में लोक विज्ञान पग-पग पर समाया है'' (पृष्ठ 34)। इसके उदाहरण है लोकगीत, लोकगाथा,

पुराकथा या मिथक, लोकोक्ति, कहावतें, पहेली, मुहावरे एवं सुभाषित। साथ ही लोक मान्यता, लोक अवधारणा, लोक विश्वास और किंवदंतियों को भी रखा है। एक वाक्य में लेखक ने कह दिया- ''अनुभव से उपजा यह विज्ञान किसी कॉलेज की पढ़ाई से प्राप्त नहीं किया जा सकता।''(पृष्ठ 48)।

चौथा अध्याय ''लोक विज्ञान का महत्व एवं उपयोगिता है''। एक कथारस के आधार पर इस अध्याय को विश्लेषित किया है। पांचवा अध्याय है ''लोक विज्ञान और प्रकृति का अन्तसंबंध''। लेखक ने राजा भोज का उदाहरण दिया है कि वे बहुत ज्ञानी और विज्ञानी थे वे लोक विज्ञान के बड़े जानकार थे। ... लोक के ज्ञान-विज्ञान के आगे उसका ज्ञान कुछ भी नहीं था (पृष्ठ 52-53)। विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से इसे लेखक ने समझाया है।

छठवाँ अध्याय है ''लोक विज्ञान में प्रकृति और जल विज्ञान।'' पंच तत्वों में सभी का महत्व है, किन्तु वेदों पुराणों आदि पौराणिक ग्रंथों में जल को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। जल के तीनों रूप आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक को लेखक ने लोक जीवन के ही उदाहरण देकर परिभाषित किया है, जैसे भारतीय लोक आस्था का प्रतीक कलश, जल से भरे घड़े को देखना शुभ, नदियों के तट तीर्थरूप में, नर्मदा और गंगा का स्वर्ग से उतरना, देवताओं पर चढ़े जल का आचमन, चरणामृत रूपी जल अमृत समान, जल ही पृथ्वी का आकाश (बादल), ठोस रूप बर्फ बहता जल शुद्ध, दूसरे दिन का पानी बासी, पानी पिलाना पुण्य का काम।

पुस्तक में लेखक ने यह भी संकेत दिया है ''आज पानी एक समस्या के रूप में हमारे सामने उपस्थित है लेकिन लोक विज्ञान लोक की मनोभूमि पर खड़ा होता है। इसलिए परंपरा में जल के संरक्षण और उसे बचाने के बहुत से उपाय मौजूद रहे हैं और लोग उसका उपयोग आज भी कर रहे हैं'' (वही पृष्ठ 63)। जल की पवित्रता एवं शुद्धता का लोक जीवन से एक अच्छा सा उदाहरण लेखक ने दिया है ''हाथ में जल लेकर कोई भी संकल्प लेना।'' (पृष्ठ 65)।

सातवें अध्याय में लेखक ने व्यावहारिक पारंपरिक विज्ञान के प्रमाण और प्रामाणिकता के उदाहरण देकर अपनी बात सिद्ध की है। पानी से जुड़े कथानक एवं मुहावरों को भी लोक जीवन से ही लेकर दिए हैं। अपने निष्कर्ष में वे लिखते भी हैं ''हजारों सालों के 'ऋतुओं' के संपर्क निरीक्षण, परीक्षण और परिणामों के अनुभव जन्य नतीजों के लाभ पीढ़ी-दर-पीढ़ी आज हमारी पीढ़ी तक चलकर आये हैं तो उसमें कोई न कोई वैज्ञानिक समझ अवश्य रही होगी, तभी तो हर तरफ के विज्ञान के दैनिन्दिनी व्यावहारिक बोलचाल में ऐसा पिरो दिया है कि अनजान से अनजान और जानकार से जानकार व्यक्ति उसका प्रयोग-उपयोग पूरे विश्वास के साथ करने लगा है'' (वही पृष्ठ 78)। बुंदेली, बघेली, मालवी, निमाड़ी की कहावतों के उदाहरण जलवर्षा, माह से जुड़े भी दिए हैं एवं नक्षत्रों पर आधारित जल वर्षा संबंधी कहावतें भी उदाहरण रूप में ली है।

पुस्तक के अंतिम अध्याय में लोक विज्ञान की अभिव्यक्ति के माध्यम भी बताए हैं। इस अभिव्यक्ति को समझाने के लिए भी विभिन्न बोलियों के उदाहरण दिए है। अनुष्ठान परक लोक विज्ञान पर भी लेखक ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। यज्ञ, पूजा-पाठ, अनुष्ठान का महत्व भी लोक में सबसे अधिक है। इस विज्ञान को लेखक ने विभिन्न उदाहरणों द्वारा भी स्पष्ट किया है। इसे अनुभव का विज्ञान भी कहते हैं। लोक का विज्ञान निरर्थक नहीं है, क्योंकि ये सभी चीजें सदियों से आज तक प्रचलित है। खान-पान के लिए भी निश्चित माह में जो चीजें खायी जाए तो इंसान कभी बीमार नहीं होता। पहेलियों में तो जीवन जीने के बहुत से संदेश भरे हैं। औषधि विज्ञान भी लोक विज्ञान का एक रूप है, जो सदियों से चला आ रहा है।

पुस्तक के अंत में लेखक के ये विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है ''जीवन का कोई छोर नहीं है, उसी प्रकार जीवन में लोक विज्ञान का कोई अंत नहीं। जीवन के पग-पग पर विज्ञान के कोई न कोई चिन्ह मिलते हैं....'' (वही पृष्ठ 115)

श्री निरगुणेजी यह पुस्तक गाँवों विशेषकर मध्यप्रदेश के गाँवों की प्रायमरी स्कूल के बच्चों को विज्ञान विशेषकर लोक विज्ञान को समझाने में महत्वपूर्ण सहायक सिद्ध होगी। अंग्रेजी की बोझिल किताबों को जिन गरीब व मासूम बच्चे खरीदकर पढ़-लिख नहीं सकते। उन्हीं की भाषा में वे इस लोक-विज्ञान को अच्छी तरह समझ सकते हैं। मध्यप्रदेश सरकार को चाहिए कि निरगुणेजी की इस पुस्तक को पाठ्यक्रम में शमिल करें। क्योंकि खुद की भाषा-बोली में कही गई बात को बच्चे अच्छी तरह से समझते एवं ग्राह्य करते हैं।

सबसे अच्छी बात यह है कि लेखक का बचपन गाँव विशेषकर निमाड़ में ही बीता है, इसलिए उन्होंने ग्रामीण जीवन को अत्यन्त नजदीक से जाना और जीया है। लोक विज्ञान को विश्लेषित करने के लिए समीपवर्ती क्षेत्रों की बोलियों जैसे मालवी, निमाड़ी, बघेली, बुन्देली के भरपूर उदाहरण दिए हैं, और यह सिद्ध कर दिखाया है कि लोक अर्थात् मानवीय जीवन के जीने में कौन-सा विज्ञान काम कर रहा है। यह सत्य है कि विज्ञान आज की देन है, परंतु चमत्कार को नमस्कार या विचित्र ज्ञान ही विज्ञान आदिम युग से चला आ रहा है। परिपक्व अवस्था में उनकी इस पुस्तक का प्रकाशित होना इस बात का सबूत है कि उन्होंने लोक जीवन को अत्यन्त नजदीक से देखा और परखा है।

संपूर्ण पुस्तक में लेखक की गहन अध्ययनशीलता का परिचय भी मिलता है।

पुस्तक : जीवन में लोक विज्ञान, **लेखक :** वसंत निरगुणे, **प्रकाशक :** सुभद्रा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, **मूल्य :** 250/-

- एफ- 37, बी/एस-5 स्कीम नं. 78 शालीमार टाउनशिप के सामने,
ए.बी. रोड, इन्दौर (म.प्र.), मो. 9329769449

■

पुस्तक समीक्षा

कृति-विमर्श

कविता संग्रह 'अनुभव का मुँह पीछे है' पर

बलराम गुमास्ता का विमर्श :

अशोक शाह की कविताएँ अपनी जातीय स्मृति और अस्मिता में ग्लोबल''

अशोक शाह का यह कविता संग्रह 'अनुभव का मुँह पीछे है' आठवां महत्वपूर्ण योगदान कविता के लिए है। जैसा कि इस संग्रह में 52 महत्वपूर्ण कविताएँ संकलित की गई हैं और उनका प्रकाशन देश के सबसे प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान वाणी प्रकाशन नई दिल्ली ने किया है। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि, अशोक शाहजी ने दुनिया के प्रतिष्ठित संस्थानों में शामिल, आई.आई.टी. कानपुर और दिल्ली से तकनीकी शिक्षा ग्रहण की और और भारतीय प्रशासनिक सेवा में आने के बाद, तमाम व्यस्तताओं के बीच उनके सामाजिक 'सरोकार' जहाँ और स्पष्ट और मजबूत हुए वहीं वह कविता के रूप में हमारे सामने हैं।

संग्रह की प्रस्तावना में श्री शाह ने कविता को लेकर अपना पक्ष स्पष्ट किया है, जो उनकी रचना प्रक्रिया और सरोकारों को साझा करने में हमें मदद देता हैं।

- उनका मानना है कि आज ''कल्पना की उड़ान की जगह अनुभव की आसक्ति अधिक त्वरा के साथ पैर जमाती जा रही है''
- संवेदना के स्थान पर जीवन में विवेक और बुद्धि का अधिक प्रयोग हो रहा है।
- ''संघर्ष सामाजिक न्याय की सीमा लांघ कर'' व्यक्ति न्याय तक पहुंचना चाहता है।
- ''कविताओं की भावभूमि दार्शनिकता की है।''

श्री शाह की उपरोक्त मान्यताएँ उनके संग्रह की कविताएं पढ़ते हुए अपने अभिप्राय और उद्देश्यों में सफल होती हैं।

कविताओं में उनकी एक बहुत ही महत्वपूर्ण और हमारे समय की सबसे बड़ी विडम्बना को लेकर भी उनकी चिंता को समझा जा सकता है जब वे कहते हैं कि ''भौतिक विकास की तीव्र दौड़ में विभाजन और बिखराव भी अनियंत्रित गति से घटित हो रहा है, नतीजा अधिक विभाजन और संघर्ष, टूटने के स्वर कविता में मुखर हो रहे हैं''

उनकी चिंता है कि ''वह (मनुष्य) समष्टि से हटकर व्यक्ति के रूप में अलग पहिचान स्थपित करने के लिए अनवरत प्रयत्नशील है जो सृष्टि और ब्रह्माण्ड के मूल सिद्धान्त के ही विरुद्ध है''

श्री शाह की कामना है कि मनुष्य वैश्विक नागरिक हो, वह संकीर्णता चाहे वह राष्ट्र की अवधारणा को लेकर हो, राज्य, धर्म, सम्प्रदाय या व्यक्ति की सामाजिक संरचनात्मक पहचान को लेकर हो उसे अस्वीकर करते हैं।

दुनिया में आज संकीर्ण खूनी राष्ट्रवादी या यों कहें कि हिटलरवादी दक्षिणपंथी जाति, धर्म, रंग, सभ्यता के आधार के बंटवारे की प्रवृत्ति के उफान और उभार के समय, मनुष्य के पक्ष में उसकी गरिमा

के रक्षार्थ अगर कोई उद्घोष कोई कविता, कोई रचना अपनी आवाज उठाती है, बुलंद करती है तो वह स्वागत योग्य है। समय की माँग और मनुष्य की 'वसुधैव कुटुंम्बकम' जैसी सद्इच्छा - की पक्षधरता का प्रमाण है शाहजी की कविताएँ। श्री अशोक जी की यह कविता पंक्ति देखें, जो पुस्तक के कवर पर ही दी गई है,

''धरती बाँट दी गई है
खेत, खलिहानों, राज्यों, और राष्ट्रों में
पालतू तोते की तरह आदमी
लौट-लौट आता है
अपने-अपने पिंजड़े में।''

अशोक जी की कविताएँ उस जड़ता के खिलाफ हैं, जो मनुष्य के लालच लोभ और बिखराव के चलते उसके जीवन में अमानवीय स्तर तक पहुँच गई है और जहाँ, उसकी संवेदना मरती जा रही है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि, ''कला प्रयास के मूल में मानव की जड़ता पर विजय प्राप्ति के प्रयास की ही अभिव्यक्ति होती है''

जाहिर है अशोक जी की कविता मानवीय जड़ता से संघर्ष करती है, दुनिया के किसी भी कोने में न्याय के लिए संघर्षरत व्यक्ति के साथ उनकी कविता अपने आपको खड़ी पाती है, जो कविता की महत्वपूर्ण आत्मा है।

मानव चेतना की शक्ति और चित्त में रूप-कला की वह कल्पना जो मानव मात्र ही नहीं समूचे जीवन जगत की बेहतरी की कामना करती है, वह कविता के कलारूप में भी हमारे सामने इस तरह आती है, जैसा हमने अभी कविताओं में सुना और रचनाकार के सरोकारों से हम दो चार हुए। अगर हम रामचन्द्र शुक्ल जी के शब्दों में कविता को समझना चाहें तो उनका मानना था कि

''कविता मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-संबन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।''

आज सुनी गई कविताएँ हमें उस अनुभूति लोक की यात्रा कराने और उनसे दो-चार होने में अपनी सार्थक भूमिका निभा पाई। ऐसा मेरा विश्वास है।

मानव के अन्त:, बाह्य और प्रकृति के नाना संबंधों के ज्ञानात्मक संज्ञान बनने की प्रक्रिया को हम समझकर ही श्री अशोक शाह की कविता ''अनुभव का मुँह पीछे है'' को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। पहले यहाँ कविता का एक पद देखें-

''अनुभव का मुँह पीछे है
जैसे राख, जली चिता की
सत्य स्वर गूंजता अविरल
कसी समय की वीणा का।

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि जो बातें यहां मैं अशोक जी की कविता को लेकर कर रहा हूँ यह 'दूसरापाठ' है और जो अशोक जी ने लिखा। वह मूल पाठ होगा, उनकी कविता का। जाहिर है, कविता यह स्वतंत्रता देती है कि उसके विभिन्न पाठ संभव हैं। इसी तरह अन्य कला रूपों के भी एक से अधिक पाठ होते हैं। व्यक्ति के स्वत: से संवाद (इंटरपरसनल कम्युनिकेशन) की प्रक्रिया के दौरान एल एन रोजर का अध्ययन यह बताता है कि, ज्ञानात्मक संवेदना का संज्ञान बनने से पहले सृष्टि में उपलब्ध तमाम जानकारियाँ (डाटा) कम से कम पचास आवृत्तियों द्वारा जाँचा-परखा जाता है, तब जाकर वह हमारे अनुभव का हिस्सा बनता है।

चेतना इस तरह समय का परिवर्तन का संज्ञान लेती। यह भी समझना तब आवश्यक है, कि समय क्या है तो समय को हम सृष्टि में होने वाले परिवर्तन के क्रमिक दर्शन की अवधारणा से अर्जित करते हैं। याने आस-पास होने वाले परिवर्तन को क्रमिक रूप में देखने से समय का भान हमें होता है।

इस तरह कवितांश में अनुभव का मुँह पीछे है कि व्यंजना और 'सत्य-स्वर-गूंजता अविरल' में सृष्टि से अर्जित ज्ञानात्मक संवेदना के भाव को समझा जा सकता है।

दरअसल कविता मनुष्य के रचनात्मक संसार की वह ऊर्जा है जो ब्रह्माण्ड की उस अनंत ऊर्जा के समरूप है, जिसे (एन्ट्रापी कहते हैं) एट्रापी वह डिसऑडर और बेचेनी है, जो अन्तत: कुछ रचना चाहती है, वह कामना जो लगातार विस्तारित होती है, और अन्तत: प्रकृति-पदार्थ से ऊर्जा-ऊर्जा से स्पेश-(आकाश) में परिवर्तित होने और फिर उसके उलट भी- रचनात्मक संसार रचती है। यह प्रकृति का रहस्य है और कविता का भी। अपनी प्रस्तावना में श्री शाह ने- मात्रा ऊर्जा और आकाश के अंतसंबन्धों पर बात कही है। यहाँ श्री शाह की कविता में सरोकारों की अगर कुछ बानगी देखें तो कुछ कविताांश इस तरह है-

कविता पर्यावरण : ''बबूल के पीले फूलों, की तरह कविता से

''और जब बनाया पहला मकान
काटे गये सबसे पहले वृक्ष
पुराने और फिजूल समझ''

कविता सहूलियत कविता :-

जिम्मेदारियों से विमुख/कितना भयानक हो सकता है / रिसता मनुष्य / जैसे बाँध से रिसता पानी / या कारखाने से रिसती गैस / या फिर उनसे भी बढ़कर।

कविता पंख से टकराकर-

गौरैया की मौत, प्रकृति की पहली दर्ज एफ.आई.आर. थी। साम्प्रदायिक उन्माद विस्थापन विखण्डन, स्त्री विमर्श दर्शन- सभी विषयों पर बहुत प्रभावी कविताएँ संग्रह में हैं, भाषा और खासकर तत्सम शब्दों का प्रयोग कविता की व्याप्ति बढ़ाने के लिए सुन्दर ढंग से किया गया है। पथ पर केवल पथिक होते- (कविताांश)

सत्य नहीं, किसी पथ पर होता
पथ पर केवल पथिक होते हैं
पूर्व निर्धारित मंजिल पाने
अनुयायी ही अधिक मिलते हैं।

प्रस्तावना में श्री शाह ने अपनी कविताओं को दार्शनिक कविताएँ कहा है तो यहाँ यह समझना आवश्यक है कि आखिर दर्शन है क्या तो इसे हम यथार्थ की परख के लिए जो मानवीय दृष्टिकोण है, उसे समझ सकते हैं, याने सृष्टा एवं प्रकृति के सिद्धांतों और उनके कार्यकारणों की विवेचना ही दर्शन है और यह काम श्री शाह की कविताएँ बखूबी करती हैं।

कविताांश (परदा कविता)

कभी हमारी शक्ल पर तो / कभी अक्ल पर पड़ जाता है परदा / अंतरात्मा के भीतरी तहों में लहराता / राम-रहीम में बांटता / हमें अलग करता / शेष दुनिया से

अपनी ही नजरों में अब गिरकर
वह भीड़ का हिस्सा हो चुका है
जहाँ जितनी अधिक भीड़ है
वहाँ डर उतना ही दृढ़ है
यह भीड़ एक धर्म / संघ या देश हो सकती

- अन्तत: कविता पाठ और संदर्भित अंशों से यह कहा जा सकता है कि श्री शाह की कविताएँ गहरे सच और जीवंत अनुभव की कविताएँ हैं, जो अपने मानवीय सरोकारों में खरी उतरती हैं।
- कविता में भाषा का चलन और तत्सम शब्दों का सुन्दर प्रयोग अचंभित भी करता है।
- सामाजिक न्याय के लिए सतत् उद्यम से परिपूर्ण इन कविताओं की आत्मा में मनुष्यता का आग्रह है।
- वैश्विक नागरिकता की चाह और लोक मंगल इन कविताओं की कामना है।
- ये कविताएँ कट्टरवादी दक्षिण पंथ / साम्प्रदायिकता / व्यक्तिवाद का कड़ा विरोध करती अपने मूल स्वर में प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की हिमायती बन पड़ी हैं।
- संक्षिप्त में कहूँ तो श्री शाह की कविताएँ ''अपनी जातीय स्मृति और अस्मिता में ग्लोबल'' कविताएँ हैं।

अंत में यह कविताएं ब्रह्माण्ड की एन्ट्रापी की तरह जैसा कहा, कवि की रचनात्मक ऊर्जा की वह उथल-पुथल है, जो ऊर्जा और लय से ओतप्रोत और उस आंतरिक लय से संगत करती लगती है।

जहाँ पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई लगातार समूचे जीवन - जगत की बेहतरी की प्रार्थना में, निमग्न और निरंतर है।

- बलराम गुमास्ता, म.नं. 104, न्यू चौकसे नगर, लाम्बाखेड़ा,
बैरसिया रोड, भोपाल-462038, मो.: 9668268151

समवेत

क्षितिज संगीत समारोह में दिखा नये और पुराने संगीतकारों का संगम ....

सम, संगीत नायक पंडित दरगाही मिश्र संगीत अकादमी एवं लोक कला मंच के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित संगीत क्षितिज का उद्घाटन कैप्टन शिखर जौहरी, शिक्षा विद् दयानन्द वत्स, पंडित शीतल प्रसाद मिश्र, विदुषी मिताली चक्रवर्ती, उदय वीर सिंह एवं सम के संस्थापक अध्यक्ष पंडित विजयशंकर मिश्र ने संयुक्त रूप से दीप प्रज्वलित करके किया, कार्यक्रम का शुभारंभ सामूहिक तबला वादन से हुआ, जिसे रोनित चक्रवर्ती, संवेद ओझा, निखिल वर्मा, अनीश भल्ला और दिव्यांश मौर्य ने झपताल में प्रस्तुत किया। इसके अंतर्गत उठान, टुकड़े, परन, कमाली और फरमाइशी चक्रदार की सुंदर प्रस्तुतियाँ हुई, हारमोनियम पर दिवाकर शर्मा ने अच्छा साथ दिया। उज्ज्वल मिश्र ने राग यमन की भावपूर्ण अवतारणा की उनके द्वारा प्रस्तुत भजन भी खूब पंसद किया गया। तबले पर उदय शंकर मिश्र और हारमोनियम पर ललित सिसोदिया ने उनका साथ दिया। अमीश कंसल का त्रिताल में स्वतंत्र तबला वादन काफी आकर्षक रहा। सार्थक भट्ट ने अपना गायन राग गौड़ सारंग में प्रस्तुत किया। तबला संगत जतिन नागपाल ने किया। दिनेश कुमार ने अपने द्रुत ख्याल और भजन के माध्यम से लोगों की खूब प्रशंसा पायी। देवाशीष चक्रवर्ती की तबला और ललित सिसोदिया की हारमोनियम संगत सहयोग पूर्ण रही। युवा गायिका देवश्री चक्रवर्ती ने अपने भाव पूर्ण गायन द्वारा स्वर और लय दोनों का साधिकार परिचय दिया। इनकी तानें भी अच्छी तरह से तैयार हैं। दामोदर लाल घोष और देवाशीष चक्रवर्ती का हारमोनियम और तबला संगत सहयोग भरा रहा। युवा तबला वादक अमन पाथरे ने त्रिताल में प्रस्तुत अपने मुक्त तबला वादन में दिल्ली और फरुखाबाद घराने की अनेक सुंदर रचनाओं का वादन किया। सिया वर्मा ने कथक नृत्य शैली में प्रस्तुत राम भजन के माध्यम से राम के गुणों का सुंदर चित्रण किया। समारोह के प्रथम दिन का समापन लखनऊ से पधारे बनारस घराने के दिग्गज तबला वादक पंडित शीतल प्रसाद मिश्र के सुंदर स्वतंत्र तबला वादन से हुआ। पंडित जी ने बनारस और दूसरे घरानों की अनेक दुर्लभ रचनाओं का प्रभावशाली वादन करके लोगों को सम्मोहित कर दिया। हारमोनियम पर ललित सिसोदिया ने उनका अच्छा साथ दिया। पंडित मिश्र को संगीत शिरोमणि सम्मान से कैप्टन शिखर जौहरी विदुषी मिताली चक्रवर्ती और पं.विजयशंकर मिश्र ने सम्मानित किया। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध संगीत निर्देशक पंडित मोहिंदर सरीन जी का भी अभिनंदन किया गया।

सम यानी सोसाइटी फॉर एक्शन थ्रू म्यूजिक, संगीत नायक पंडित दरगाही मिश्र संगीत अकादमी एवं लोककला मंच के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित समारोह में अमेरिका में रह रही भारतीय मूल की सुविख्यात सितार वादिका विदुषी रेशमा श्रीवास्तव को संगीत शिरोमणि सम्मान ने सम्मानित किया गया। संगीत संध्या का शुभारंभ डॉ. गवीश राय और आनन खुरमा के सुमधुर गायन से हुआ। तबले पर मनमोहन डोगरा और हारमोनियम पर ललित सिसोदिया ने सूझबूझ युक्त संगत किया। बिट्टू कुमार द्वारा निर्देशित संगीत संरचना में गायन, संतूर, सितार और तबले का अलग -अलग रंग दिखा। राग यमन पर आधारित इस संगीत संरचना में बिट्टू कुमार, दिव्यांशु बिडला, व्याख्या, प्रियंका, प्रशंसा और गौतम लाल ने भाग लिया। अमनदीप कौर थींड द्वारा प्रस्तुत कथक नृत्य की प्रस्तुति भी अच्छी रही। सामूहिक नृत्य संरचना में शाम्भवी भट्ट, तेजस्विनी शर्मा, किंजल यादव, आन्वी सुखरालीया देवश्री श्रीवास्तव, अंशुल भारतीय भव्या नागपाल ईशानी सिंह और हिमांशी सिंह ने भाग लिया। इस नृत्य संरचना को आष्मिता मिश्र ने निर्देशित किया था... समापन विदुषी रेशमा श्रीवास्तव के सुमधुर सितार वादन से हुआ। रेशमा राग कीरवानी की भावपूर्ण अवतारणा की। तबला संगत राहुल मलिक ने की। इस अवसर पर रेशमा को संगीत शिरोमणि सम्मान से विभूषित किया गया।

रपट : रेणुका आर्य

अटल साहित्य भूषण सम्मान'' 2018 से सम्मानित किया गया

विश्व हिन्दी लेखिका मंच के द्वारा अटल स्मृति काव्य महोत्सव समारोह मनाया गया। हिन्दी सागर पुस्तक का लोकार्पण और सम्मान समारोह आयोजित किया गया। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि राघवेन्द ठाकुर जी संस्थापक एवं मुख्य संयोजक, विशिष्ट अतिथि डॉक्टर सुरेन्द्र बिहारी, संचालक म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल डॉक्टर प्रेमलता नीलम (दमोह) वरिष्ठ कवयित्री एवं शिक्षाविद्, डॉक्टर ज्योति मिश्रा (बिलासपुर) वरिष्ठ कवयित्री एवं शिक्षा विद्, डॉक्टर वीणा अग्रवाल (कोटा) वरिष्ठ कवयित्री एव शिक्षाविद्, डॉक्टर शोभा राणे (कोटा) वरिष्ठ कवयित्री एवं शिक्षाविद्, श्री युगेश शर्मा, श्री महेश सक्सेना वरिष्ठ बाल साहित्यकार डॉक्टर रेखा भटनागर, वरिष्ठ लेखिका भोपाल ने कार्यक्रम संयोजन उदबोधन एवं आभार व्यक्त किया है।

डॉक्टर विनीता प्रजापति ' ''वेदान्शी'' भोपाल वरिष्ठ

साहित्यकार, लेखिका, बिन्दु त्रिपाठी, मीना गोण्डे रही। समारोह का आरंभ के अमृता अवस्थी सरस्वती पूजन व स्वागत से का आरंभ किया गया। विशिष्ट अतिथि व अतिथियों का भाषण उदबोधन के बाद सम्मान समारोह प्रारम्भ हुआ। भारत वर्ष से पधारी कवयित्रीओं को उनके उत्कृष्ट साहित्य कार्य हेतु सम्मानित किया गया। कवयित्रीओं को स्मृति चिन्ह, शालॅ, सम्मान पत्र, पुष्पमाला प्रदान कर सम्मानित किया गया। ■

नादऑरा द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय सांगीतिक पहल

संगीत किसी भी देश के लिए भाषा का मोहताज नहीं है, जहाँ भाव पक्ष है, वहाँ उसे शब्दों की सीमा मे नहीं बाँधा जा सकता। 19 दिसंबर 2018 को इंडिया हैबिटाट सेंटर के अमलतास हॉल में नादऑरा द्वारा आयोजित इंटरनेशनल इंडो जैज संगीत समहारोह भव्य रूप से मनाया गया। अमेरिका से आए विश्व प्रसिद्ध सैक्सोफोनिस्ट एवं जैज संगीत के प्रोफेसर डॉक्टर दमानी फिलिप्स एवं लंदन से आए अमेरिका निवासी जैज ड्रमर विंसेंट केली मुख्य अतिथि थे तो वहीं भारत के सुप्रसिद्ध तबला वादक डॉक्टर ऋषितोष कुमार, शोध कलाकार व. गायिका रेखा कुमारी, मैहर घराने के बांसुरी वादक सतीश पाठक एवं बेसिस्ट अक्षय द्विवेदी कार्यक्रम के मुख्य आकर्षक बिंदु रहे।

दो संगीत की धाराओं में सांगीतिक अनुशासन के साथ जो स्वर और लय के माध्यम से संवाद देखा गया, वह बहुत ही आकर्षक एवं मंत्रमुग्ध करने वाला था। शुरुआत राग जोग में सरस्वती स्तुति के प्रस्तुति के साथ मालकौन्स, देश एवं भैरवी में विभिन्न छंदात्मक रचना एवं प्राचीन स्तुति मंत्रों के साथ जैज संगीत के विभिन्न रचनाओं के साथ स्वर लय का संवाद स्थापित किया गया।

नादऑरा एक ऐसी सांस्कृतिक संस्था है, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत, योग एवं अन्य पारंपरिक संगीत और प्रदर्शन कलाओं के शिक्षण और प्रचार में उत्कृष्टता के लिए समर्पित है। नादऑरा आधुनिक दृष्टिकोण और सामाजिक संवेदनशीलता से प्रेरित है और आज के समकालीन संदर्भ में भारत की विविध और प्राचीन विरासत को संरक्षित और लोकप्रिय बनाने के लिए प्रतिबद्ध है।

पिछले 12 वर्षों से नादऑरा बनारस घराने के महान तबलावादक सम्राट पंडित अनोखे लाल मिश्र एवं पंडित छोटेलाल मिश्र की याद में राष्ट्रीय संगीत समारोह करता आ रहा है। जिसमें देश के विश्वप्रसिद्ध गायक एवं वादक कलाकारों ने भाग लिया है। संस्था ने उन्हें सम्मानित भी किया है और उदीयमान कलाकारों को भी मंच प्रदान किया है। दिल्ली विश्वविद्यालय के तबला प्रोफेसर एवं नादऑरा के संस्थापक अध्यक्ष डॉ ऋषितोष ने संगीत के क्षेत्र में विशेष योगदान को देखते हुए संस्था की तरफ से प्रोफेसर दमानी फिलिप्स को नादरत्न सम्मान से सम्मानित किया। संस्था की उपाध्यक्ष एवं योग गुरु जागृति ने पुष्प गुच्छ, अंगवस्त्र एवं तामपत्र से डॉ दमानी को सम्मानित किया। विशेष अतिथि में न्यूयॉर्क के लेहमन कॉलेज के प्रोफसर एवं जैज कंपोजर डॉक्टर डेविड कलेमन एवं राज्य सभा के सचिव प्रवीण कुमार द्वारा अन्य कलाकारों को अंग वस्त्र के साथ सर्टिफिकेट ऑफ एक्सीलेंस ऑफ एक्सीलेंस प्रदान किया गया। मंच संचालन की भूमिका शिल्पी सिन्हा ने निभायी। ■

वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान समारोह में हुआ रचनात्मकता का सम्मान
देश के सात रचनाकार हुए सम्मानित

इंदौर। शहर की प्रतिष्ठित संस्था आपले वाचनालय के संस्थापक संस्कृति पुरुष वसंत राशिनकर की स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले अ. भा. सम्मान समारोह का गरिमापूर्ण आयोजन आपले वाचनालय सभागृह में किया गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे विद्वान डॉ. विठ्ठल माधव पागे एवं अतिथि द्वय प्रो. सरोज कुमार व अश्विन खरे ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि कवि, मूर्तिकार और समाजसेवी वसंत राशिनकर द्वारा आपले वाचनालय के माध्यम से समाज में रचनात्मकता के लिए किया गया काम अतुलनीय है। इसके पूर्व प्रसंग वक्ता के रूप में उपस्थित अरुणा खरगोणकर ने अपने आत्मीय संबोधन में वसंतजी के कार्यों और समर्पण को शिदद्त से याद किया।

आपले वाचनालय व श्री सर्वोत्तम के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित इस सम्मान समारोह में ठाणे के युवा कवि गीतेश गजानन शिंदे को समारोह के सर्वोच्च सम्मान कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा.सम्मान से सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय कृतियों को दिए जाने वाले वसंत काव्य साधना अ.भा .सम्मान से औरंगाबाद के गुलाबराव पाथरकर, बुरहानपुर की अनुराधा मुजुमदार, गोवा की मंदा धनराज सुगिरे, मुंबई के रमेश सावंत और इंदौर की माधवी करमल्लकर को अतिथियों द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर अच्युत पोतदार प्रदत्त रामू भैय्या दाते स्मृति पुरस्कार रक्त दान के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दे रहे युवा समाजसेवी दीपक नाईक को प्रदान किया गया।

उत्तरार्ध में वरिष्ठ कवयित्री अरुणा खरगोणकर की अध्यक्षता में प्रभावी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस काव्य यात्रा में राधिका इंगले, मेधा खीरे, डॉ.वासुधा गाडगील, दीपक देशपांडे, विश्वनाथ शिरढोणकर, श्रीनिवास कुटुम्बले, वैशाली पिंगले, मनीष खरगोणकर, सुषमा अवधूत, शोभा खानवलकर और मदन बोबडे ने अपनी विविध रंगी कविताओं से श्रोताओं को अभिभूत किया।इस अवसर पर सम्मानित रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं का पाठ किया। सुचारू संचालन किया आभा निवसरकर और श्रीति राशिनकर ने। अतिथि एवं रचनाकार का स्वागत संदीप राशिनकर, सतीश येवतिकर, मधुसुदन तपस्वी, अरविन्द डीके, डॉ. शशिकांत ताम्बे आदि ने किया।इस अवसर पर कार्यक्रम में बड़ी संख्या में सुधी श्रोता उपस्थित थे।

खोजी पत्रकारिता के लिए ‘सत्यमेव जयते’ एवं फौज के लिए ‘राष्ट्र गौरव’ पुरस्कार की घोषणा

पत्रकारिता का जीवंत दस्तावेज है जारोदय : प्रो. सारंगदेवोत जार

जार उदयपुर की ओर से प्रकाशित ‘जारोदय -2018’ का विमोचन

उदयपुर। राजस्थान विद्यापीठ डीम्ड टू बी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. एस. एस. सारंगदेवोत ने कहा कि विद्यापीठ विश्वविद्यालय शीघ्र ही दो श्रेणियों में पुरस्कार देगा, जिसमें सेना के तीनों विंग में श्रेष्ठ कार्य पर राष्ट्र गौरव पुरस्कार व खोजी पत्रकारिता के लिए सत्यमेव जयते पुरस्कार दिये जायेंगे। ये विचार प्रो. सारंगदेवोत ने गुरुवार को प्रतापनगर स्थिर सभागार में जर्नलिस्ट एसोसिएशन ऑफ राजस्थान (जार) उदयपुर की स्मारिका जारोदय-2018 के विमोचन अवसर पर व्यक्त किए।इस अवसर पर डॉ. तुक्तक भानावत, सुमित गोयल, डॉ. रविकुमार शर्मा, कपिल श्रीमाली, विद्यापीठ के विशेषाधिकारी डॉ. हेमशंकर दाधीच, डॉ. घनश्यामसिंह भीण्डर, कृष्णकांत कुमावत, पवन खाब्या, विपिन गांधी, एम.एल.जैन, विकास बोकाडिया, अजयकुमार आचार्य, संजय व्यास, राजेन्द्र हिलोरिया, अनिल जैन, अल्पेश लोढा, भूपेन्द्रकुमार चौबीसा, भूपेश दाधीच, महेश व्यास, अब्बुल अजीज राजु सहित कार्यकारिणी के पदाधिकारी उपस्थित थे।

प्रो. सारंगदेवोत ने जर्नलिस्ट एसोसिएशन ऑफ राजस्थान (जार) उदयपुर की ओर से प्रकाशित स्मारिका ‘जारोदय -2018’ का विमोचन जार उदयपुर कार्यकारिणी के सदस्यों, पदाधिकारियों, संरक्षक मंडल की मौजूदगी में किया।

सदा प्रज्वलित रखें समाज का दीप: राज्यपाल

उदयपुर। समाज सेवा का दीप सदा प्रज्वलित रहना चाहिये। समाज में ऐसी अनेक प्रतिभाएँ छिपी हैं, जो अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट कार्य कर रही हैं। निष्ठा तथा समर्पण से अपने कार्यक्षेत्र में विशिष्टता हासिल करने वाले जब समाज में सम्मानित होते हैं, तब उनका संदेश बहुआयामी होता है। ये विचार पश्चिम बंगाल के राज्यपाल केसरीनाथ त्रिपाठी ने व्यक्त किये। अवसर था 16 दिसम्बर 2018 को कोलकाता

में आयोजित विचार मंच द्वारा सम्मान समारोह का।

मुख्य अतिथि के रूप में राज्यपाल ने कहा कि एक तरफ वृहत्तर समाज में कृतज्ञता का भाव जागृत होता है तो दूसरी तरफ युवा पीढ़ी को इससे प्रेरणा भी प्राप्त होती है। इसका तीसरा प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है जो नई ऊर्जा के साथ अपने कार्य में पूर्णता के साथ प्रवृत्त होते हैं। उन्होंने अपना उद्बोधन अपने स्वरचित गीत 'जलते रहो ऐ दीप तुम जलते रहो' से समाप्त किया।

पिटोरिया स्ट्रीट स्थित ज्ञानमंच सभागार में आयोजित इस भव्य सम्मान समारोह की अध्यक्षता प्रख्यात समाजसेवी व उद्योगपति पदमचंद भूतोडिया ने की। उन्होंने कहा कि ऐसे सम्मान राष्ट्र की रीढ़ बन दीपशिखा की तरह ज्योतिर्मान होते हैं। समारोह में डॉ. महेन्द्र भानावत को राज्यपाल द्वारा प्रशस्ति पदक तथा सेठियाजी के सुपुत्र डॉ. जयप्रकाश द्वारा 51 हजार का चेक प्रदान कर सम्मानित किया गया।

डॉ. महेन्द्र भानावत ने कहा कि कन्हैयालाल सेठियाजी का सान्निध्य उनके लिए स्वर्णिम यादगार लिये है। पहली बार सन् 1981 में चुरु में लोकसंस्कृति शोध संस्थान ने सेठियाजी को डॉ. एल. पी. टेस्सिटोरी और मुझे झवेरचन्द मेघाणी स्वर्ण पदक दिया गया। दूसरी बार 1984 में उदयपुर के महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन के समारोह में उन्हें महाराणा कुंभा तथा मुझे महाराणा सज्जनसिंह पुरस्कार से नवाजा गया। इस बार मैं उन्हें हल्दीघाटी ले गया। वहाँ रक्तलाई की माटी से उन्होंने सबसे पहले मुझे तिलक किया और लोकसाहित्य का मोटा भेदू कह फिर अपने भाल को ललित लावण्य दिया। डॉ. भानावत ने कहा कि लोककला हमारी विरासत है और हम सबको मिलकर इसके संरक्षण, संवर्द्धन के साझे प्रयास करने होंगे। विचार मंच के मंत्री सरदारमल कांकरिया ने कहा कि हमें सम्मान की इस परम्परा को अक्षुण्ण रखना है, क्योंकि यहाँ से मिली ऊर्जा हम सबको जीवन में आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देती है। अध्यक्ष पन्नालाल कोचर, मंत्री सरदारमल कांकरिया ने पुरस्कारों के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। संयोजन तारा टुगड़ ने किया।

समारोह में डॉ. भानावत के अलावा कर्मयोगी सम्मान सत्यनारायण खेतान को, फूसराज बच्छावत सम्मान स्वास्थ्य जागृति संस्थान को, कान कंवरी पारख ग्राम्य सेवा संस्थान सम्मान शंकरलाल अग्रवाल को, ब्राह्मी कला सम्मान राजीव सूर राय को, अनुपमा सम्मान प्रत्युषा राय, कलामंडलम् निम्मी व संग्राम राय को तथा रवीन्द्र जैन संगीत साधना सम्मान मोहनलाल बरडिया के पुत्र को प्रदान किया गया।

रपट : तुक्तक भानावत

डॉ. भानावत को कोमल कोठारी लोककला पुरस्कार

उदयपुर। लोककला के क्षेत्र में उत्तकृष्ट योगदान के लिये कोमल कोठारी स्मृति लोककला पुरस्कार इस साल उदयपुर के लोककलाविद डॉ. महेन्द्र भानावत एवं अहमदाबाद के जोरावरसिंह दानुभाई जादव को संयुक्त रूप से प्रदान किया गया। यह पुरस्कार 21 दिसंबर को शिल्पग्राम उत्सव के उद्घाटन अवसर पर मुख्य अतिथि सुखाड़िया विवि के कुलपति प्रो. जे पी शर्मा, कृषि विवि के कुलपति उमाशंकर शर्मा एवं जिला एवं सत्र न्यायाधीश रवीन्द्र माहेश्वरी द्वारा प्रदान किया गया। सम्मान स्वरूप डॉ. भानावत को 1 लाख 25 हजार पाँच सौ की राशि, शॉल तथा रजत पट्टिका से नवाजा गया।

गुरु जितेंद्र महाराज को अटल नृत्य निष्णात सम्मान ...

विगत दिनों संसद भवन में आयोजित एक विशेष कार्यक्रम में विश्व विख्यात कथक नृत्य गुरु पंडित जितेन्द्र महाराज को अटल नृत्य निष्णात सम्मान से सम्मानित किया गया। सम्मानित होने के बाद इस लेखक के यह पूछने पर कि कैसा लग रहा है इस सम्मान को पाकर ? महाराज ने मुस्कराते हुए कहा कि स्वर्गीय अटल बिहारी वाजपेयी के नाम का सम्मान पाना अत्यंत सम्मान का विषय है, वे मेरे प्रिय राज नेताओ में से रहे हैं, वाजपेयी जी एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जिनका सम्मान पार्टी लाइन से अलग हटकर हर दल के लोग करते थे, उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से मानवता का संदेश दिया है।

यह पूछने पर कि उनकी कौन-सी कविता आपको इस समय याद आ रही है ? जितेन्द्र महाराज ने कहा कि कई कविताएँ याद आ रही हैं... आओ फिर से दिया जलाएँ... जंग न होने देंगे... और गीत नया गाता हूँ... जैसे उनके कई गीत मैं अक्सर गाता गुनगुनाता रहता हूँ।

गुरु जितेंद्र महाराज ने आगे कहा कि वाजपेयी जी उन्हे इसलिए भी पसंद थे कि वे ज़मीन से जुड़े इंसान थे, उन्होंने अनथक परिश्रम करके अपना अद्वितीय स्थान बनाया था। वे मुंह में चांदी का चम्मच लेकर नहीं पैदा हुए थे। उन्होंने जो कुछ भी पाया अपनी योग्यता, परिश्रम और कार्य के बल पर पाया, जिसमें भारत रत्न जैसा सम्मान भी शामिल है। केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी की रत्न सदस्यता सहित देश विदेश के अनेकानेक सम्मानों से विभूषित गुरु जितेंन्द्र महाराज ने अपने नृत्य के घराने - बनारस घराने की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस परंपरा में नृत्य की सात्विकता पर जोर दिया जाता है। हम तबले, पखावज के बोलों की अपेक्षा घुँघरू और नृत्यगत बोलों को अधिक महत्व देते हैं। जितेंन्द्र महाराज ने एक अन्य प्रश्न के उत्तर में कहा कि भारतीय शास्त्रीय कलाओं पर कोई खतरा नहीं है, ये शास्वत हैं और इनकी सार्थकता तथा प्रासंगिकता हमेशा बनी रहेगी।

रपट: पं. विजयशंकर मिश्र

■

संदीपन सोसाइटी का वार्षिक उत्सव सम्पन्न

संदीपन म्यूजिक एंड एजुकेशनल सोसाइटी ने अपना 11वां वार्षिक उत्सव इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में काफी अच्छी तरह से मनाया। आकशवाणी के सेवा निवृत्त डिप्टी डायरेक्टर जनरल और प्रख्यात कवि डॉ. लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, सितार वादक प्रोफेसर प्रतीक चौधरी और एन. डी. टी. वी. के मशहूर पत्रकार रवीश कुमार मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। संदीपन स्कूल समाज सेवा के काम में भी संलग्न है। अनाथ, असहाय बच्चों, लड़कियों और दूसरों के घर में छोटा-मोटा काम करने वाली महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा के लिए भी यह संस्था काम करती है। आज की संगीत संध्या का शुभारंभ गणेश वंदना से हुआ, जिसे छोटे बच्चों ने प्रस्तुत किया। इसके बाद योग के कुछ आकर्षक अंगों का भी सफल प्रदर्शन हुआ। तत्पश्चात निप्रा मजूमदार के निर्देशन में संदीपन स्कूल के छात्र छात्राओं ने कुछ गीतों की सामूहिक प्रस्तुति दी। कोलकाता के सुप्रसिद्ध गायक श्री श्रीकांत राय चौधरी ने राग भूपाली में अपना शास्त्रीय गायन काफी आकर्षक अंदाज में प्रस्तुत किया। विलंबित एक ताल में निबद्ध ''प्रभु तुम दाता सबन को'' और द्रुत त्रिताल में प्रस्तुत ''पार करो मोरी नैया भंवर में'' को सुंदर आलाप और तानों से सुसज्जित करके भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया। इन्होंने कबीर दास के भजन ''मों को कहाँ ढूढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में-'' को गाते हुए इन्होने मंदिर, मस्जिद को गाते हुए वैराग्य के भावों का सुंदर प्रदर्शन किया।

इसके बाद इलीशा दीप गर्ग और मिन्हास खान ने युगल कथक नृत्य के माध्यम से एक शिव स्तुति प्रस्तुत किया- शंकर गिरिजा पति महादेव मिन्हास खान ने धमार ताल में तेज तर्रार कथक नृत्य प्रस्तुत किया। उनकी भ्रमरी, पदाघात और तेजी चमक आकर्षित करती है। लेकिन थोड़ा शांत रस की ओर भी उन्हे ध्यान देना चाहिए। इलीशा ने अपने गुरू पंडित बिरजू महाराज द्वारा रचित बोल बांट की एक बंदिशी ठुमरी-देखो सखि नहीं मानत मोरी लपक झपक मग रोकत श्याम पर अच्छा अभिनय किया। उनके अभिनय में महाराज जी का असर दिखता है। त्रिताल में कुछ अच्छी रचनाओं को उन्होंने अच्छी तरह से प्रस्तुत किया। इलीशा में अच्छी संभावना है इसलिए उन्हे एक विनम्र सुझाव। वे अभी छोटी हैं इसलिए जितनी बोल्ड वे दिखने की कोशिश करती हैं वह उन पर फबता नहीं है। थोड़ा ध्यान कॉस्ट्यूम पर भी उन्हे देना चाहिए। वे एक शास्त्रीय नृत्य की उदीयमान नृत्यांगना हैं। उनके सभी साथी कलाकारों ने उनका अच्छा साथ निभाया।

श्रीकांत राय चौधरी के साथ तबले पर डॉ. नागेश्वर लाल कर्ण और हारमोनियम पर रवि पाल ने अच्छा साथ निभाया।

■

ॐ नादब्रह्म संस्था का सांगीतिक आयोजन सम्पन्न

14 दिसंबर 2018 को मुंबई में शिवाजी पार्क नागरिक संघ ॐ नादब्रह्म संस्था के सम्मिलित प्रयासों से एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। श्रोताओं को शास्त्रीय गायन के साथ ही सांगीतिक व्याख्यान की तरफ भी रुचि बढ़ाने के लिए इस कार्यक्रम, में औरंगाबाद के श्री. सचिन नेवपुरकर का गायन और दिल्ली के डॉ. मुकेश गर्ग के व्याख्यान का सम्मेलन किया गया था, जो अत्यंत सफल रहा। नई पीढी के कलाकार श्री सचिन नेवपुरकर ने राग मधुवंती से शुरुआत की आकर्षक उपज व विभिन्न तानों से उन्होंने राग का विचार बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। इसके बाद राग हमीर, जो आजकल कम ही सुनाई देता है और फिर एक मराठी अभंग गाकर उन्होंने श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। तबले पर उनका साथ दिया श्री शांतनु शुक्ल और हारमोनियम पर श्री विनोद पडघे ने, जो कि अत्यंत सुमधुर और उपयुक्त था।

डॉ. मुकेश गर्ग जो कि, संगीत के अत्यंत सफल समीक्षक हैं, उनका व्याख्यान इसके बाद हुआ। उन्होंने अपने, आधुनिक संगीत की ओर देखने के, एक अलग अंदाज को श्रोताओं के समक्ष अत्यंत प्रभावशाली तरीके से रखा। उनका विषय था ''आधुनिकता का सवाल और हिन्दुस्तानी संगीत।'' उनके अनुसार आधुनिकता का अर्थ समाज में विभिन्न विषयों पर सवाल पूछनें की स्वतंत्रता का होना है। स्वतंत्रता ही हमें आधुनिकता बनाती है। उन्होंने बताया कि हिंदुस्तानी संगीत पारंपरिक विद्या होने के साथ ही लगातार बदलता भी जा रही है। पर हम सभी पुरानी बातों को बेहतर व नई वस्तुओं को कमतर समझते है। असल में प्राचीन काल में जो बहुत सारा काम संगीत पर किया गया, मध्य काल में उस काम को ही पक्का बनाया गया, उसका अध्ययन किया गया। मध्य काल में प्राचीन काल में किये हुए अविष्कारों व नियमों पर अमल किया गया, उस पर मेहनत की गई। पर आधुनिक युग उसकी समीक्षा का युग है। उस पर सवाल करके, उस पर विचार करके जो बात आज के परिप्रेक्ष्य में सही है, उसे आत्मसात करने और विश्वास करने का युग और अमान्य बातों को बदलने का युग ही आधुनिक युग है। संगीत एक परम्परा है, क्योंकि उसमें नियम हैं, पर जो नियम आज के संदर्भ में नहीं बैठते, उन्हें बदलना ही सही प्रतीत होता है।

उन्होंने कहा 'शुद्ध' रागों को आधुनिक संदर्भ में देखने की जरुरत है। यह एक सामान्य चलन है कि, जब भी कोई बदलाव आने लगता है तो हम प्राचीन पद्धति की ओर सम्मान दिखाने के लिए उसे शुद्ध और आधुनिक पद्धति को देशी विदेशी या कोई मिश्रित नाम देते हैं, पर उन वस्तुओं की शुद्धता का अध्ययन होना जरूरी है।

उनके अनुसार आज का वैदिक संगीत असल में वैदिक युग और मुगल युग के प्रभाव के बाद मिला हुआ संगीत है। आज के 10 ठाठों में से 5 ठाठ प्राचीन वैदिक युग से और शेष 5 ठाठ मुगलों के आगमन के बाद आए हुए प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार संगीत रग-रग में होने या पैदाइशी होने के बजाय संगीतकार की मेहनत का फल होता है। उसका उस्ताद बनने के लिए बहुत रियाज़ करना पड़ता है, अन्य प्रलोभन छोड़ने पड़ते हैं। संगीत को यदि सिर्फ़ जन्मजात या देवप्रदत्त कहेंगे या सिर्फ भगवान से जोड़ेंगे तो उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती।

मनुष्य की हर पीढ़ी ने संगीत को बढ़ाया है। इस का विकास मेहनत से हुआ है। हिंदुस्तानी संगीत को हमें पीछे जाती हुई, पुरानी, मूढ़ लोगो की कला नहीं, अपितु आगे बढ़ती हुई, बदलती हुई, विचारयुक्त कला के रूप में देखना व प्रस्तुत करना है। आज का संगीत माइक्रोफोन आने के कारण 'सुरों के लगाव' को बहुत महत्व देने लगा है। सुरों को मधुरता व हल्के से पेश करके दिलों में घुसने की ताकत देना आधुनिक संगीत की देन है।

डॉ. मुकेश गर्ग ने पूरे व्याख्यान में अपनी मनोरंजक भाषा व भिन्न सोच से श्रोताओं को पूरा बांधे रखा। ॐ नादब्रह्म की सुश्री माधवी नानल जी के विशेष प्रयासों के कारण एक अच्छा व्याख्यान सुनने को मिला, यह विशेष रूप से बताना होगा।

रपट : निवेदिता जौहरी, मुम्बई

■

श्रेष्ठ भारत संस्कृति समागन में दिखी भारतीय कलाओं की श्रेष्ठता

केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी और असम के सांस्कृतिक संचानलय द्वारा गौहाटी के श्रीमत शंकर देव कला क्षेत्र में अत्यंत भव्य स्तर पर आयोजित पाँच दिवसीय श्रेष्ठ भारत संस्कृति समागम में आना ज्ञान का खजाना पाने जैसा रहा... कई नई जानकारियाँ देते हुए यह सम्पन्न हुआ।

प्रथम दिन का प्रात: कालीन सत्र नाटकों पर केंद्रित था। सायंकालीन सत्र असम के राज्यपाल डॉ. जगदीश मुखी द्वारा दीप प्रज्जवलन के साथ आरंभ हुआ। संगीत नाटक अकादेमी के अध्यक्ष कवि, गायक, संगीतकार और अभिनेता श्री शेखर ने सेन जहाँ अकादेमी की कार्यप्रणाली और इस आयोजन के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला, वहीं राज्यपाल ने अकादमी के प्रयासों की सराहना की। उल्लेखनीय है कि श्रेष्ठ भारत संस्कृति समागम की यह चौथी कड़ी थी। इसके पहले उड़ीसा के भुवरेश्वर, गुजरात के अहमदाबाद और पंजाब के अमृतसर में यह सफलता पूर्वक सम्पन्न हो चुका है।

इसके बाद स्वर्गीय हबीब तनवीर साहब के मशहूर नाटक आगरा बाज़ार का भव्य मंचन हुआ। हबीब तनवीर साहब का यह बहुत बड़ा योगदान है कि छत्तीसगढ़ के अप्रशिक्षित लोक कलाकारों को लेकर उन्होने नया थियेटर की स्थापना की और देश-विदेश में अपने नाटकों का मंचन किया। आगरा बाज़ार की उम्र 50 वर्ष से अधिक की हो गई है फिर भी इसका आकर्षण कम नहीं हुआ है। जीवंत संगीत, नृत्य, अभिनय, सशक्त पटकथा, चुटीले संवाद, नज़ीर अकबराबादी की गज़लें और ककड़ी, तरबूज तथा लड्डू पर लिखे गीत लोगों को अलग - अलग भाव और रस की अनुभूति कराते रहे। एक ओर एक तवायफ की परेशानियाँ हैं, दूसरी ओर किन्नरों की स्थिति है, तीसरी ओर नज़ीर की गज़लों पर बंटा हुआ समाज है... और... सच पूछिए तो क्या नहीं है आगरा के इस बाजार में... तारीफ नहीं मुहब्बत करने का मन होता है हबीब साहब और नज़ीर साहब से उनके जिन साथियों ने इस लौ को जलाये रखा है, वे सभी साधुवाद के पात्र हैं।

पंडित चेतन जोशी के अनुसार खुदाई में हड्डियों से बनी एक ऐसी बाँसुरी प्राप्त हुई है, जो लगभग 45 हजार वर्ष पुरानी है।

प्राचीन समय में बाँसुरी के स्वर के आधार पर ही वीणा के स्वर मिलाये जाते थे। तब बांसुरी को वेणु कहा जाता था। चेतन जोशी बाँसुरी के विकास में पंडित पन्नालाल घोष, पंडित विजय राघव राव, पंडित देवेन्द्र मुर्देश्वर, पंडित रघुनाथ प्रसन्ना, भोला नाथ प्रसन्न, पंडित रघुनाथ सेठ और पंडित हरिप्रसाद चौरसिया आदि के महत्वपूर्ण योगदानों की भी चर्चा की। जैसे पन्ना लाल घोष ने बाँसुरी बनाने के लिए प्रयोग किये जोने वाले बाँस को बदला, बांसुरी की लंबाई और व्यास को बदला, रघुनाथ सेठ ने उसमे एक नया छिद्र बनाकर उसमे चाबी लगाया, इसी तरह व्यंकेटशी गोलखाँड़ी और केशव गिंडे भी बाँसुरी को लेकर लगातार प्रयोग कर रहे हैं। चेतन ने बांसुरी बजाकर भी सुनायी और बताया कि वे अपनी एक बाँसुरी पर ही साढ़े तीन सप्तक तक का तान बजाते हैं।

चेतन जोशी ने कला परिदृश्य के बदलते आयाम: बाँसुरी के विशेष परिप्रेक्ष्य में विषय पर अपना शोध पूर्ण पत्र पढ़ा।

असम के दिलीप रंजन बरठाकुर ने वाद्यों के 2 भिन्न प्रकारों पर अपना लिखित पर्चा पढ़ा। इसी प्रकार पदम श्री हरहिर मंगलम ए. के. पलनिवेल ने दक्षिण भारत के अवनद्ध वाद्य तविल के अतीत, वर्तमान और भविष्य पर अपना पत्र अपनी क्षेत्रीय भाषा में बहुत संक्षिप्त में पढ़ा जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी पढ़ा गया। प्रोफ़ेसर विदुषी कृष्णा बिष्ट ने गायन पर बोलते हुए कहा कि रागदारी परंपरा मे सैकड़ों वर्षों में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ है और जो छोटे-मोटे परिवर्तन हुए हैं, वे उल्लेखनीय नहीं हैं। उन्होंने दिल्ली घराने की गायन विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला और कहा कि हमारा संगीत शाश्वत है और यह ऐसे ही रहेगा। राजस्थान से पधारे हवेली संगीत के विद्वान पंडित चन्द्र प्रकाश जी ने किशनगढ़, हवेली संगीत और पुष्टि मार्गीय वल्लभ संप्रदाय के आंतरिक संबंधों पर विद्वता पूर्ण ढंग से प्रकाश डाला। उन्होंने अत्यंत सुरीले अंदाज में कई रचनाओं का गायन करके लोगों का दिल जीत लिया। सुप्रसिद्ध बाँसुरी वादक पंडित राजेंद्र प्रसन्ना ने अपना वक्तव्य शहनाई पर दिया। उनके अनुसार शहनाई सबसे पहले बनारस में बजा। शहनाई एक कठिन साज है। इसके अच्छे कलाकारों की कमी तो है, लेकिन जो अच्छे कलाकार हैं भी तो

उन्हे अवसर नहीं मिल पा रहा है। जिसकी ज़रूरत है। बाँसुरी वादक पंडित राजेंद्र प्रसन्ना ने आज शहनाई का अच्छा वादन भी किया।

छत्तीसगढ़ से पधारे श्री अशोक तिवारी ने कहा छत्तीसगढ़ एकदम युवा राज्य है, जिसकी स्थापना 2000 में हुई है। उन्होंने छत्तीसगढ़ के लोक नाट्य नाचा के विषय में विस्तार से जानकारी दी। नाचा के 4 प्रकारों के विषय में बताते हुए उन्होंने इसके सगुण और निर्गुण पदों तथा कबीरदास, सूरदास, मीरा बाई, रामानंद आदि का भी उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ नाचा में इनके भजनों को काया खंडी लोक गान शैली में गाया जाता है। नाचा में नर्तकों को परी और विदूषक को जोकर कहते हैं।

अगले दिन की सभा लोक संगीत पर केन्द्रित थी। अध्यक्षता डॉ. प्राकश खंडगे ने किया जिन्हें इस वर्ष अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित करने की घोषणा हो चुकी है। गुजरात से पधारे श्री निरंजन राजगुरु गुजरात के भक्ति साहित्य और भक्ति संगीत पर बहुत ही अच्छी तरह से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि गुजरात में भक्ति साहित्य काफी उन्नत अवस्था में है। यहाँ एकल, युगल और सामूहिक रूप से भक्ति गीत गाये जाते हैं। गुजरात में भक्ति गीत, भक्ति संगीत और भक्ति नृत्य की कई शाखाएँ और परंपराएँ यहाँ प्रचलित हैं। सगुण और निर्गुण दोनों धाराएँ यहाँ प्रचलित हैं। 24 घंटे का संगीत समय अनुकूल रूप में हैं। आरती के कई प्रकार – यहाँ तक कि गाय और कौआ तक की आरती उपलब्ध है। वैष्णव जन तो तेने कहिए को हमारे यहाँ प्रभाती के रूप में गाया जाता है। श्री निरंजन राजगुरु ने की रचनाओं की सुरीली प्रस्तुति की उन्होंने यह भी कहा कि ईश्वर कि अब भक्ति संगीत का मूल रूप बदल गया है। अब तो भक्ति संगीत के स्टेज शो होने लगे हैं और उस पर पश्चात्य संगीत तथा वाद्य यंत्र हावी होने लगे हैं। कश्मीर के फारूख फैयाज ने कश्मीर के लोक संगीत, नृत्य और सिनेमा पर प्रकाश डालते हुए राज तरंगणी और अभिनव गुप्त आदि की भी चर्चा की और सांस्कृतिक पर्यटन की भी।

झारखंड से आये गिरधारी राम गुंजू ने पाईका और छाऊ नृत्य के विषय में बताते हुए स्पष्ट किया कि युद्ध नृत्य होने के बादजूद इसमें युद्ध की भयानकता और विभीषिका नहीं है। इस में संगीत और नृत्य का माधुर्य युद्ध के रोमांच के बीच दिखता है। इन्होंने स्पष्ट किया कि पाईका सिर्फ एक नृत्य है, जबकि छाऊ पूरी नृत्य नाटिका की तरह है। जिसमें धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों की प्रस्तुति होती है। उनके अनुसार इसमें ज्यादातर काम सामूहिक रूप से किया जाता हैँ

श्री अशोक तिवारी यह भी स्पष्ट किया कि नाचा में महिलाओं की भूमिका भी पुरुष ही करते हैं। अब ज़रूर देवार नाचा में महिलाएँ काम करने लगी हैं। इन्होंने छत्तीसगढ़ के एक अन्य लोक नृत्य गम्मत का उल्लेख करते हुए बताया कि किस प्रकार से इसके माध्यम से सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया जाता है।

असम के श्री प्रसन्न गोगोई ने असम के लोक वाद्ययंत्रों पर प्रकाश डाला। उन्होंने सिर्फ असम में पाये जाने वाले भैंस के सिंग से बने पेपा, ढोल, एकतारा, मंजीरा, गगना आदि के विषय में जानकारी देते हुए असमी संगीत में इनकी वादन विधि पर भी प्रकाश डाला।

अगला सत्र भारतीय नृत्यों पर केन्द्रित था, जिसकी अध्यक्षता डॉ. प्रदीप ज्योति महंत ने की सुविख्यात कुचीपुड़ी नृत्यांगना अनुराधा जोन्नलगट्टा ने अपना पत्र कुचीपुड़ी नृत्य पर पढ़ा।

इस सत्र में लोक को लेकर काफी विचारोत्तेजक बहस भी हुई। सभा की अध्यक्षता कर रहे श्री प्रकाश खंडगे जी ने कहा कि लोक इस समय संकट की घड़ी से गुजर रहा है, क्योंकि इसकी भी मार्केटिंग होने लगी है। इसलिए इसका भविष्य चुनौतियों भरा है। लेकिन परिवर्तन तो युगधर्म है। फिर भी लोक को उसके सांस्कृतिक वातावरण में ही देखना चाहिए उन्होंने इस कथन के साथ इस सत्र को विराम दिया कि जब तक माँ के दूध में मिठास और आँसुओं में खारापन है तब तक लोक भी सुरक्षित है।

उन्होने कहा कि यह कम से कम डेढ़ सौ वर्ष पुरानी नृत्य शैली है जो तेलुगु भाषा में है। शुरू में स्त्रियों को इस नृत्य में भाग लेने की अनुमति नहीं होती थी और सिर्फ ब्राह्मण परिवार के पुरुष ही इसे करते थे, लेकिन अब ये सारे बंधन खत्म हो चुके हैं। पहले कुचेलपुरा नामक ग्राम के कुछ परिवारों तक ही सीमित था यह नृत्य लेकिन 1940–50 से मध्यम वर्गीय परिवारों के कुछ दूसरे लोगों ने भी इसे सीखना शुरू किया। और अब तो दुनिया भर में लोकप्रिय है यह नृत्य कथक नृत्य के जयपुर घरानें की विदुषी नृत्यांगना, केन्द्रीय संगीत नाटक आकदेमी सम्मान से सम्मानित शोभा कौसर ने जयपुर घरानें की तकनीकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला साथ ही ठुमरी गायन और कथक नृत्य के रिश्ते को भी रेखांकित किया। उन्होंने पंडित नारायण प्रसाद जी की कुछ रचनाएँ भी सुनाईं। शोभा जी को युवा पीढ़ी से यह शिकायत थी कि ये बहुत जल्दी में है। इनके पास सीखने और समझने का धैर्य नहीं है।

संगीत नाटक आकदेमी सम्मान से सम्मानित मणिपुरी नृत्य की सुप्रसिद्ध नर्तकी प्रीति पटेल ने कहा कि मणिपुरी नृत्य वस्तुत: वैष्णव मंदिरों में की जाने वाली प्रार्थना है इसलिए इसे मंच पर प्रस्तुत करते समय सामने यह चुनौती भी रहती है कि एक पूजा, प्रार्थना, भक्ति को मंच पर सबके सामने कैसे प्रस्तुत किया जाए? मणिपुर में धार्मिक संस्कार और नृत्य एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। संकीर्तन जीवन का अंग है। विवाह में भी संकीर्तन का आयोजन होता है। लाईहरोबा सिर्फ मंदिरों में किया जाने वाला नृत्य था लेकिन आज इसे मंच पर भी किया जा रहा है। प्रीति ने इस बात पर चिंता जताई कि आज का युवा पैसे के पीछे भाग रहा है, इसलिए वे उन विधाओं से जुड़ रहें हैं, जिनमें पैसे सामने दिखते हैं।

औरंगाबाद से आईं कथक नर्तकी पार्वती दत्ता ने कहा कि

औरंगाबाद का प्राचीन नाम देवगिरी था और गोपाल नायक ने यहीं पर देवगिरी बिलावल जैसे राग की रचना की थी... वे यहीं के रहने वाले भी थे। शारंगदेव का भी जुड़ाव इस स्थान से था। औरंगज़ेब के समय इसका नामकरण औरंगाबाद हुआ। उन्होंने अजंता एलोरा का जिक्र करते हुए कहा कि 14 वीं शताब्दी के बाद इस क्षेत्र में सांस्कृतिक अकाल पड़ गया है। इसके बाद पार्वती दत्ता ने अपने उन कार्यों का भी उल्लेख किया, जो वे वहाँ कर रहीं हैं।

झारखंड से आये छाऊ नृत्य के कलाकार शशधर आचार्य ने छाऊ नृत्य के विषय में बताते हुए कहा कि 1205 में सिंह भूमि में राजा की छावनी में इस नृत्य का जन्म हुआ था, इसीलिए इसका नाम छऊ नृत्य पड़ा। यह मूलत: उड़िशा प्रदेश का नृत्य है। 17 वीं शताब्दी में इस नृत्य का संपूर्ण रात्रि चलने वाला उत्सव आरंभ हुआ और 1933 में इसके कलाकार यूरोप गये नृत्य प्रदर्शन के लिए। आचार्य ने इस बात पर जोर दिया कि विदेश जाने वाला पहला नृत्य छाऊ ही है।

तमिलनाडु से आईं, संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित भरतनाट्यम नृत्यांगना नन्दिनी रमणी ने भरतनाट्यम नृत्य की उत्पत्ति, विकास और प्रदर्शन पर अपना पत्र पढ़ा। उन्होंने विभिन्न नृर्तकों के योगदान को भी रेखांकित किया। साथ ही संगीत नृत्य समीक्षाओं की दुर्दशा पर भी चिंता प्रकट किया। अध्यक्षता कर रहे डॉ. प्रदीप ज्योति महंत ने मानव जीवन में नृत्य की भूमिका पर प्रकाश डाला।

रपट: विजयशंकर मिश्र

स्मृति चिन्ह: वसंत रानडे सुप्रतिष्ठित वायलिन वादक

अपनी अनूठी वायलिन वादन शैली के लिए पहचाने जाने वाले बड़ौदा के संगीतकार वसंत रानडे का विगत दिनों उनके गृह नगर बड़ौदा में निधन हो गया। आगामी अंक में उनके सांगीतिक अवदान पर विशेष सामग्री हम प्रकाशित करेंगे।

संलग्न चित्र वर्ष 1996में इंदिरा गाँधी मानव संग्रहालय में वसंत रानडे जी के एकल वादन कार्यक्रम के निमन्त्रण-पत्र का है, जिसे अब तक संजोयक रखा था कला समय के परामर्श मंडल के सदस्य और समकालीन हिन्दी कविता के चर्चित कवि राग तेलंग ने। उल्लेखनीय है कि स्व.वसंत रानडे जी की ओर से राग के पिताजी प्रसिद्ध सितार वादक स्व.शरद तेलंग अभिन्न मित्र थे राग जी हिन्दुस्तानी संगीत की यात्रा को यशस्वी बनाने के लिए प्रयासरत हैं।

उत्सव गणतंत्र में अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान से अलंकृत हुई नौ साहित्यिक विभूतियाँ

भोपाल! साहित्य, संगीत एवं कलाओं की मानक संस्था अभिनव कला परिषद की 56वीं सालगिरह के अवसर पर आयोजित उत्सव गणतंत्र में साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजनरत नौ विभूतियों को 'अभिनव शब्द शिल्पी' सम्मान से अलंकृत किया गया। शाम यहाँ मानस भवन में प्रदेश के जनसंपर्क मंत्री श्री पी.सी शर्मा, वरिष्ठ पत्रकार पद्म श्री विजयदत्त श्रीधर ने प्रो. सुरेश आचार्य सागर, श्री रामबाबू रस्तोगी-रायबरेली, प्रो. शरदनारायण खरे मंडला, प्रो शैलेन्द्र शर्मा उज्जैन, श्रीमती जया मोहन श्रीवास्तव इलाहाबाद, श्री रशीद अंजुम, राजेन्द्र शर्मा अक्षर, श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि एवं डॉ. साधना बलवटे भोपाल को शॉल श्रीफल प्रशस्ति पत्र एवं प्रतीक चिन्ह भेंट कर सम्मानित किया।

इस अवसर पर वरिष्ठ संगीतज्ञ डॉ, सीता तिवारी द्वारा निर्मित जाने माने संगीतकार एवं कवि नंदकिशोर शर्मा रचित भजनों की दो आडियों सी.डी. 'तेरा तुमको अर्पण' का अतिथियों द्वारा लोकार्पण किया गया। साथ ही इन भजनों के संगीतकार गायक-अनिल पौराणिक तथा राजू राव को अभिनव कला सम्मान प्रदान किया गया। कार्यक्रम के दूसरे चरण में प्रसिद्ध गायक अनिल पौराणिक, राजू राव विपिन पौराणिक एवं अंजिता दीक्षित तथा सरस्वती कला मंदिर के विद्यार्थीयों ने भजनों सांगीतिक प्रस्तुति की।

कार्यक्रम के प्रारंभ में संस्था के संस्थापक सचिव पं. सुरेश तांतेड़ ने स्वागत उद्बोधन किया। कार्यक्रम का संचालन श्री कमलेश जैमिनी, विमल भंडारी तथा बद्रवास्ती ने किया।

अंत में संस्था के संस्थापक सदस्य श्री अशोक जैन भाभा के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए उन्हें श्रृद्धांजलि अर्पित की गई।

आपके पत्र

पत्रिका के बहाने

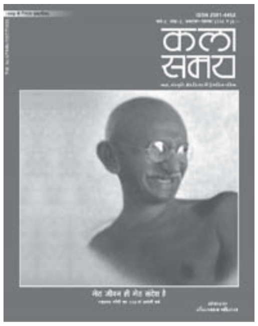

आदरणीय श्रीवास भैया, सादर प्रणाम

'कला समय' के माध्यम से आपने संगीत एवं सांगीतक उपादान, विशिष्ट एवं वरिष्ठ संगीत साधकों से परिचय एवं कला के विभिन्न आयामों को न केवल हमारे सम्मुख लाने का महती कार्य किया है, वरन् प्रस्तुतिकरण की सहजता एवं हृदय ग्राहता ने एक भावपूर्ण जीवन्तता भी प्रदान की है, संगीत के बिना इस संसार की कल्पना असंभव है। संगीत हमारी पूजा, आराधना हमारे होने का, अस्तित्व का प्रतीक है। संगीत में ही सारे रस, अलंकार, रूप, रंग, त्योहार, प्रकृति, नदी की की सुगन्ध भाव भंगिमा और साँसों की गति समाई है कहा भी है-
साहित्य संगीत कला विहीन, साक्षात पशुपुच्छ विषाण हीन

आज ये जो युवा पीढ़ी भटक रही है। असंयमित और दिशा विहीन है। उसका कारण साहित्य संगीत कला से बिछोह है। क्या बाँसुरी बजाने वाली, मेघ मल्हार गाने वाली रंगों से, मिट्टी से, काष्ठ से स्वयं को अभिव्यक्त करने वाली कोई अनुभूति संवेदनहीन होकर आतंकी या आक्रांता हो सकती है ? कभी नहीं। मशीनीकरण ने मानव को मानव से कितना दूर कर दिया है। क्या संगीत, नृत्य, कला की कोई जाति, मज़हब, रंग या बोली होती है ? कदापि नहीं। यहीं तो मानव सब सुधबुध खो देता है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् को आत्मसात कर परमात्मा की उपस्थिति को अनुभूत करता है और सदैव सारे संसार के कल्याण की कामना करता है।

मुझे संगीत की, कलाओं की महिमा अनंत है। मेरा सौभाग्य रहा कि बचपन से ही साहित्य, संगीत, कला, नृत्य सभी कुछ जानने और सीखने का अवसर मिला मेरे पास प्रारम्भ से ही संगीत विषय के रूप में रहा। संगीत गायन, वादन बारहवीं तक और संगीत वादन (सितार) बी.ए. तक विषय के रूप में रहा। प्रैक्टिकल भी रहा और थ्योरी भी पढ़ी नृत्य भी सीखा। परीक्षाएँ दी। प्रयाग संगीत समिति से भी कई परीक्षाओं में सफल रही।

बचपन से ही या कहिए छुट्टी में ही साहित्य संगीत प्राप्त हुआ। घर का वातावरण और परिवेश सब संगीतमय रहा। हालांकि मूल विषय हिन्दी और अंग्रेजी रहा। केन्द्रीय विद्यालय से प्रशिक्षित स्नातक शिक्षिका (अंग्रेज़ी) सेवा निवृत्त हुई किन्तु साहित्य-हिन्दी अंग्रेजी का संगीत से जुड़ कर सार्थक हुआ।

कहना यह कि यह संगीत और अन्य कलाओं को उदघाटित करती एक विशिष्ट पत्रिका है जो आपके संपादन में दिनों दिन निखर रही है। युवा पीढ़ी के लिए यह एक मापदण्ड है कि संगीत में सारी समस्याओं का समाधान संभव है, मानसिक संत्रास और अवसाद की दवा है संगीत। मैं स्वयं संगीत से जुड़ना अपने जीवन की उपलब्धि मानती हूँ। 'कला समय' सभी पीढ़ी की अनुभूतियों पर दस्तक देती है। पत्रिका के निरन्तर प्रवहमान् रहने की प्रभु से प्रार्थना करती हूँ। अपनी पूरी टीम को अशेष बधाई एवं शुभकामनाएँ। शेष यथावत्। नए वर्ष की भी अनंत असीम शुभकामनाएँ।

सादर।

- मधु प्रसाद

परमादरणीय श्री भँवरलाल श्रीवास जी,

'कला समय' के अंक-2 (अक्टू-नव. 18) में मेरे आलेख को स्थान देकर मुझे कृतार्थ किया। आभार। ललित कलाओं की सुन्दर पत्रिका है 'कला समय'। यह अंक भी कला के विभिन्न रूपों से अवगत कराता है। संगीत के क्षेत्र में रसरंग जी का आलेख- 'ग्वालियर घराने की अष्टांग गायकी हो या ईश्वरी रावल की चित्रकारी संदीप राशिनवार का आलेख या फिर चाहे कला पुस्तको की समीक्षाएं ही क्यों न हों, इन सबसे गुजरते हुए, हमारा कलाबोध जाग्रत होता है, जहाँ हम अपनी संस्कृति की जड़ों से जुड़ते हैं, जिसकी आज हमें अत्यधिक आवश्यकता है, इस अंतर आधुनिक समय में।

इसी क्रम से श्री राम अधीर और प्रेम शंकर शुक्लजी की कविताएं हैं जिनसे भाव-बोध हमें कला सौंदर्य की अनुभूति कराते है। ऐसे सुरुचि-संपन्न अंक के लिए बहुत-बहुत बधाई।

आशा है और विश्वास भी आप स्वस्थ आनंद होगे।

- श्री आस्तिक

आदरणीय श्रीवास जी,

कला समय का अक्टूबर-नवम्बर 2018 का अंक प्राप्त हुआ। ग़ज़लें प्रकाशन के लिए धन्यवाद्। कला और साहित्य का अनूठा संगम मैंने आपकी पत्रिका में देखा। जहाँ तक मुझे ज्ञात है 'कला समय' इस तरह की देश की एकमात्र पत्रिका है। इस अनूठे कार्य के लिए आपको बहुत-बहुत बधाई, शुभकामनाएँ।

- सेरश पबरा 'आकाश', भोपाल

अनुरोध

कृपया कला समय के सदस्य बनें। इस अनुष्ठान को आगे बढ़ायें। कला समय के सदस्य लेखकों, कलाकारों की रचनाओं को प्राथमिकता से स्थान दिया जावेगा। कला समय में समीक्षार्थ कला, संस्कृति और विचार पर केन्द्रित अपनी कृतियाँ हमें प्रेषित करें। समीक्षा हेतु कृति दो प्रतियों में भेजें। भेजी हुई पुस्तकें लौटाना मुमकिन नहीं होगा।

-सम्पादक

नन्हें कलाकारों की दुनिया

यह मुन्नियों और मुन्नों का संसार हैं ।इसमें किसी भी किस्म की बिना छापवाले मनों की चौकड़ियाँ और कुलाँचे हैं। इन नवांकुरों की भावी छलांगों की सम्भावनाओं को यह पृष्ठ समर्पित हैं- कला समय।

शिव सेन

जन्म : 22/02/2012
शिक्षा : पहली
स्कूल : सेंट जोसफ पब्लिक स्कूल, कोटा, राजस्थान
निवास : पाटनपोल कोटा (राज.)
रूचि : ड्राईंग

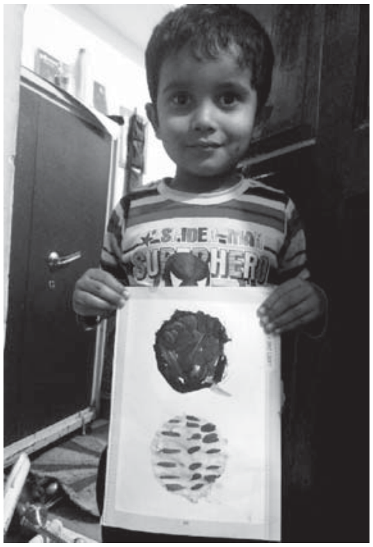

सार्थक श्रीवास

जन्म : 17 जून 2014
शिक्षा : के.जी. - 1
स्कूल : संस्कृति फाउन्डेशन, अरेरा कालोनी, भोपाल
रूचि : ड्राईग
निवास : अरेरा कॉलोनी भोपाल म.प्र.

आप भी अपने बच्चों की प्रतिभाओं को उजागर करने हेतु इस पृष्ठ का हिस्सा बन सकते है - संपादक

स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है - सिमोन द बुआ

महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में

- निर्मिश ठाकर

इंदिरा गोस्वामी

अमृता प्रीतम

नलिनी जयवंत

महाश्वेता देवी

मध्यप्रदेश शासन
जनसम्पर्क विभाग

पत्रकारिता सम्मान

प्रविष्टियां प्राप्त होने की अंतिम तिथि 10 फरवरी, 2019

राज्य शासन, पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट और जनोन्मुखी कार्य करने वाले पत्रकारों से राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय और संभागस्तरीय सम्मानों के लिये दिनांक **10 फरवरी 2019** तक प्रविष्टियां आमंत्रित करता है। राष्ट्रीय पत्रकारिता सम्मान, राज्यस्तरीय पत्रकारिता सम्मान, फोटो पत्रकारिता सम्मान, राज्यस्तरीय टेलीविज़न पत्रकारिता एवं कैमरामेन सम्मान तथा आंचलिक पत्रकारिता सम्मान कैलेन्डर वर्ष **2017, 2018 और 2019** के लिये प्रदान किये जाना हैं।

राष्ट्रीय सम्मान

सम्मान	उद्देश्य
गणेश शंकर विद्यार्थी सम्मान	राष्ट्रीय स्तर पर पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये
राजेन्द्र माथुर सम्मान	ध्येयनिष्ठ पत्रकारिता के लिये
विद्यानिवास मिश्र सम्मान	निर्माण और विकास गतिविधियों में उल्लेखनीय योगदान के लिये

राष्ट्रीय स्तर पर पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये न्यूनतम 50 वर्ष आयु के कम से कम 20 वर्ष का अनुभव रखने वाले पत्रकारों से प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। चयनित पत्रकार को ₹2.51 लाख की सम्मान राशि भेंट की जायेगी।

राज्यस्तरीय सम्मान

सत्यनारायण श्रीवास्तव सम्मान – उत्कृष्ट राजनैतिक रिपोर्टिंग के लिये समाचार पत्रों/इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के मध्यप्रदेश के पत्रकारों को देय इस सम्मान के लिये पत्रकारिता का कम से कम 15 वर्ष का अनुभव रखने वाले ऐसे पत्रकारों से जो 10 वर्षों से राजनैतिक रिपोर्टिंग/राजनैतिक डेस्क पर सक्रिय रूप से कार्यरत हों, निर्धारित प्रपत्र में प्रविष्टियां भेज सकते हैं। प्रिंट मीडिया से इलेक्ट्रानिक मीडिया में आए पत्रकार भी प्रविष्टियां भेज सकते हैं। चयनित पत्रकार को ₹ 1.51 लाख की सम्मान राशि भेंट की जायेगी।

महेंद्र चौधरी फोटो पत्रकारिता सम्मान – उत्कृष्ट फोटो पत्रकारिता को प्रोत्साहित करने के लिये मध्यप्रदेश के फोटोग्राफरों को देय इस सम्मान में कम से कम 5 वर्ष का अनुभव रखने वाले संचार संस्थान से जुड़े सक्रिय फोटोग्राफर प्रविष्टियां भेज सकते हैं। प्रविष्टि के साथ प्रिंट मीडिया में नाम से प्रकाशित कम से कम 20 छायाचित्रों की कतरनें संलग्न करना आवश्यक होंगी। चयनित फोटोग्राफर को ₹ 1.51 लाख की सम्मान राशि भेंट की जायेगी।

मध्यप्रदेश राज्यस्तरीय टेलीविज़न पत्रकारिता सम्मान – टेलीविज़न पत्रकारिता के क्षेत्र में दिये गये उत्कृष्ट दीर्घकालिक योगदान और अर्जित उल्लेखनीय उपलब्धियों के लिये राज्य शासन ने दो पत्रकार और दो कैमरामेन, एक राष्ट्रीय चैनल के मध्यप्रदेश में कार्यरत और एक राज्यस्तरीय चैनलों के लिये सम्मान स्थापित किया है। सम्मान के लिये न्यूनतम 35 वर्ष आयु, पाँच वर्ष का अनुभव और किसी संचार संस्थान में कार्यरत होना आवश्यक है। आवेदन के साथ राष्ट्रीय न्यूज चैनलों एवं राज्यस्तरीय न्यूज चैनलों के पत्रकार/कैमरामेन को कम से कम 20 कैप्सूल प्रस्तुत करना वांछनीय है, जिनका टेलीविज़न नेटवर्क में प्रसारण हुआ हो। चयनित पत्रकारों को ₹ 1.51 लाख एवं कैमरामेन को ₹1.01 लाख की सम्मान राशि दी जायेगी।

आंचलिक सम्मान

क्र.	सम्मान	अंचल
1.	**शरद जोशी सम्मान**	भोपाल (नर्मदापुरम संभाग सहित)
2.	**राहुल बारपुते सम्मान**	इंदौर
3.	**रतनलाल जोशी सम्मान**	ग्वालियर (मुरैना संभाग सहित)
4.	**जीवनलाल वर्मा ''विद्रोही'' सम्मान**	जबलपुर
5.	**कन्हैयालाल वैद्य सम्मान**	उज्जैन
6.	**मास्टर बलदेव प्रसाद सम्मान**	सागर
7.	**बनारसी दास चतुर्वेदी सम्मान**	रीवा (शहडोल संभाग सहित)

प्रदेश के समाचार पत्रों, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और पत्रकारिता का न्यूनतम 15 वर्ष का अनुभव रखने वाले, संबंधित अंचल में निवासरत पत्रकार अंचल के सम्मान के लिये प्रविष्टियां निर्धारित प्रपत्र में बंद लिफाफे में स्वयं के नाम से प्रकाशित कम से कम 20 प्रमाणित कतरनों सहित भेज सकते हैं। सम्मान के लिये प्रत्येक अंचल के चयनित पत्रकार को ₹ 1.01 लाख की सम्मान राशि भेंट की जायेगी।

वांछनीय:– 1. सम्मान की शर्तें एवं निर्धारित आवेदन का प्रारूप जनसम्पर्क संचालनालय की वेबसाइट www.mpinfo.org पर भी देखा जा सकता है। शर्तें एवं आवेदन–पत्र संचालनालय में भी प्राप्त किये जा सकते हैं। 2. सभी सम्मानों की प्रविष्टियों में स्वयं, पिता/पति का नाम, जन्म तिथि, जन्म स्थान, शिक्षा, कार्यरत संस्थान का नाम, डाक का पूरा पता, कार्यालय, निवास, टेलीफोन नम्बर, मोबाइल नम्बर, पत्रकारिता के क्षेत्र में अर्जित उपलब्धियां/अनुभव, पूर्व में प्राप्त पुरस्कार, सम्मान आदि का विवरण भेजें इसके साथ पोस्टकार्ड आकार के दो नवीनतम रंगीन फोटो भी संलग्न करें। 3. प्रविष्टि भेजने वाले लिफाफे पर वांछित सम्मान का नाम एवं वर्ष अवश्य अंकित करें। 4. सभी सम्मानों की प्रविष्टियां अपर संचालक अधिस्वीकृति पत्रकार कल्याण प्रभाग जनसम्पर्क संचालनालय बाणगंगा मार्ग, भोपाल के पते पर बंद लिफाफे में भेजी जाएं। 5. सम्मान के लिये चयन की अनुशंसा शासन द्वारा गठित समिति द्वारा की जायेगी। राष्ट्रीय, राज्य एवं आंचलिक सम्मानों के लिए अलग–अलग दो समितियां गठित होंगी, जो सभी सम्मानों का निर्णय करेंगी। चयन समिति प्राप्त प्रविष्टियों के अतिरिक्त जिन्हें वह उपयुक्त समझे, ऐसे उम्मीदवारों के नाम विचार क्षेत्र की सूची में सम्मिलित कर सकेगी। समिति की अनुशंसा पर राज्य शासन द्वारा लिया गया निर्णय सर्वमान्य और अंतिम होगा।

आयुक्त, जनसम्पर्क संचालनालय, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2019

D-17008

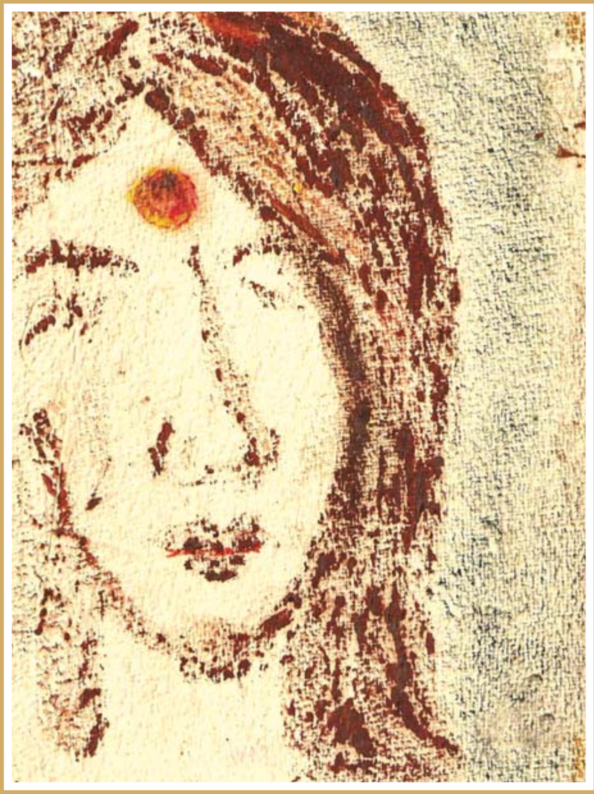

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास